वैद्य..रिभाषाप्रदीप।

भाषाटीकासहित।

आयुर्वेद महाविद्यालय.
गु. कांगड़ी

२ ५०श्लोक १६पृष्ठ
१- यस्ना ६-मीनाय
२- सनाय ७-अपामार्ग
३- गधवाला A. Leo.
४- अतीस A. Leo.
५- ब्राह्मी.



Br. Manohar ji
Ayurvedalankar.
Gurukula Kangri. (Saharanpur.)





श्रीः ।

श्रीकृष्णवल्लभसेनतनय श्रीमद्गोविन्दसेन संगृहीत

वैद्यकपरिभाषाप्रदीप.

मथुरानिवासी पं० ललिताप्रसादजीकृत

भाषाटीकासहित ।

सवतंत्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यद्वारा

परिष्कृत संशोधित एवं टिप्पणी विभूषित ।

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक-" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम्-प्रेस,

कल्याण-बंबई.

संवत् १९९०, शके १८९९.



मुद्रक और प्रकाशक-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक-"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

कल्याण-बम्बई.

प्रथम वक्तव्य।

व्याकरणके सुयोग्य विद्वानोंसे यह बात किसी प्रकार भी छिपी हुई नहीं है कि, शास्त्रमें परिभाषाओंका कितना उपयोग होता है। व्याकरणकी परिभाषाओंकेसे इस शास्त्रकी परिभाषाओंका इतना ही अन्तर है कि, वहां ज्ञापक न्याय सिद्ध हैं एवम् यहां सब वाचनिक ही हैं, पर वहां और यहां दोनों जगह परिभाषापनेमें कोई अन्तर नहीं है, यहांतक कि, इसमें भी सामान्य और विशेषोंका वाध्य बाधक भाव भी देखा जाता है। श्रीकृष्णवल्लभसेनजीके सुपुत्र श्रीमद्गोविन्दसेनने वैद्यककी परिभाषाओंका संग्रह करके इसे चार खण्डोंमें विभक्त किया है। पहिले खण्डमें—सबसे पहिले तोलकी उपयोगिता दिखाते हुए मागध और कलिंग दोनों प्रकारकी तोलोंको विस्तारके साथ कहकर शुष्क और आर्द्र द्रव्यके ग्रहणकी व्यवस्था की है। घृत तेल आदिके गुण दोष दिखाकर औषधियोंके देश, अदेश, उखाडनेकी, विधि सामान्यमें विशेषका ग्रहण एवम् ओषधियोंके प्रतिनिधि बताये हैं। दूसरे खण्डमें—पांच तरहके कषाय, उनके सेवन करनेकी मात्रा, उनके अवान्तर भेद, धातु रस आदिके सेवनकी मात्रा एवम् यवागू पेया यूष आदिका वर्णन किया है। तीसरा खण्ड—घी, तेल बनानेकी विधि, गुडपाककी पहिचान, गूगल, पाक, लोहशोधनादि, लोहपाकके लक्षण, भावना विधि, एकही प्रयोगमें दो बार कही हुई वस्तुके ग्रहणकी व्यवस्था, अनुपान, बालकोंको दवा, औषधका समय, पारिभाषिकी संज्ञा एवम् सन्धान वर्गमें पूरा हुआ है। चौथे खण्डमें—वमन, विरेचन, नस्य, निरूहवस्ति और अनुवासनवस्तिके व्यापक विचार,

धूमपान, गण्डूष, कवल धावण, रक्तमोक्षण, घृत, तेलकी मूर्च्छा विधि तथा तेलको सुगन्धित एवं निर्दोष बनानेकी विधि है।

यदि इस ग्रन्थपर विचारपूर्वक दृष्टिपात किया जाय तो इस बातके जाननेमें कोई कठिनता न होगी कि, इसमें चरक, सुश्रुत, वाग्भट, चक्रदत्त, शार्ङ्गधर, वंगसेन और आनन्दसेनका कहा हुआ चिकित्साका सारा विषय सामान्य रूपसे आजाता है। कोई ऐसा विषय नहीं है जिसके भि सर्व साधारण नियम इसने बाकी छोड़े हों। उदाहरणके लिये पंचकषाय या स्नेह विधिकोही लेलीजिये। इसकी बताई हुई रीतिसे कोई भी कषाय या स्नेह बाकी नहीं रहजाता, पर दूसरे ग्रन्थोंमें जुदी जुदी दवाओंके स्नेह बनानेकी प्रधान तथा अप्रधान ओषधियां लिखी हुई हैं, इस कारण वे बड़े आकारवाली होगई हैं। इसका जाननेवाला औषध निर्माणकी व्यापक बातोंको जान सकता है, अत एव इसे औषध निर्माणका मुख भी कह दें तो कोई अत्युक्ति न होगी।

मानके विषयमें यहां इतना कहदेना अत्यावश्यक समझता हूं कि, इसमें पाठ भेद अधिक पाया जाता है। इसी कारण भाव-प्रकाश शार्ङ्गधर तथा सुश्रुतके चिकित्सा स्थानके परिशिष्टमें आरोग्य-सुधाके संपादक फर्रुखनगर निवासी राजवैद्य पं. मुरलीधरजीने जो लिया है वही मैंने भी पाठ रखा है।

तोलके विषयमें केवल मानतापरही निर्भर रहना उचित नहीं है, इसी कारण हमने तुलवा नपवा करही लिखा है। वर्तमान तोले भरके ९६ गुंजा होते हैं. एक गुंजापर साधारण ८ चावल चढ जाते हैं। एक राजमाष (चौलाई) पर दो रत्ती चढ जाती हैं एवम् एक चावलपर साधारण १२ राई चढ जाती हैं। प्रत्यक्ष विरुद्ध मानताका

कोई महत्त्व नहीं, इस कारण हमने दोनोंही मानोंकी वर्तमान सरकारी मानसे तुलना की है। क्योंकि, प्रतिष्ठित ग्रन्थोंमें जो कुछ प्रत्यक्षसे विरुद्ध भासे उसकी योजना प्रत्यक्षके अनुकूल करना चतुर टीकाकारोंका कार्य्य हुआ करता है।

चक्रदत्तने मान परिभाषामें चरकका ३२ उड़दोंका मासा तथा ४८ मासेका १ पल बताया है एवम् १२ उड़दोंका १ मासा तथा ६४ मासेका १ पल सुश्रुतने माना है, इस तरह १५३६ उड़दोंका चरकका एक पल एवम् ७६८ उड़दभर सुश्रुतका पल होता है। इस तरह सुश्रुतका पल चरकके पलसे आधा होता है।

आजके हिसाबसे देखा जाय तो ६ तोले ८ मासेका चरकका पल तथा ३ तोले ४ मासेका सुश्रुतका पल हुआ, पर चरकका १० रत्तीका मासा फर्जी है; क्योंकि, जब ५ रत्तीका मासा १२ उड़द भर हुआ तो १० रत्तीके कुछ २४ उड़द ही होंगे; ३२ नहीं हो सकेंगे।

इस ग्रन्थमें इन दोनों मानोंसे भिन्न व्यवहृत मागध और कलिंग मान दिखाये है। जैसे कि, श्रीशार्ङ्गधर आदि वैद्यक शास्त्रके आचार्य्योंने अपने अपने ग्रन्थोंमें मागध और कलिंग मानके नामसे दिये हैं। हमने उनकी वर्तमान सरकारी तोलके साथ तुलना इस विचारसे दिखाई हैं कि, वैद्योंको वस्तुग्रहणमें विशेष सुविधा हो। परिभाषाओंके अर्थ करती बार हमने उन्हीं ग्रन्थोंका विशेष रूपसे ध्यान रखा है जहां कि, ये परिभाषाएं आई हैं एवम् संशोधन करती बार वही अर्थ रखा है जो कि, भावप्रकाश और वंगसेनकी टीकामें कविवर लाला शालिग्रामजी, सुश्रुतकी टीकामें राज वैद्य मुरलीधरजी तथा शार्ङ्गधर, चरक और

अष्टाङ्गहृदयकी टीकामें पटियाला निवासी राजवैद्य वैद्यरत्न श्रीमान् पं० रामप्रसादजी तथा उनके सुयोग्य पुत्रने किया है । तथा पाठ भी वहींका यहां प्रधान रखा है एवम् मूलका शोधन भी उन्हीं ग्रन्थोंके आधारपर किया है पर कहीं कहीं विचार विमर्श इन लोगोंके अर्थपर भी हमने किया है तथा हिन्दी टीकाकारके रखे हुए संस्कृत टीकाके अवतरणोंको टिप्पणीके रूपमें रखकर हिन्दीमें अर्थ करदिया है ।

परिभाषाके बलसे द्रवद्रव्य(जलादि)कहां दूना लिया जाय कहां न लें यह बात पूर्वापर परिभाषाओंकी एक वाक्यता पर निर्भर है,क्योंकि द्रव द्वैगुण्य चाहते हुए भी पलके उल्लेखसे आये हुए मानमें द्वैगुण्यके ग्रहणका स्वयम् परिभाषाही निषेध करती हैं । दुगुना करना न करना परिभाषाओंके समन्वयको देख वृद्ध वैद्योंके व्यवहारके अनुसार करना चाहिये । मुरादाबादनिवासी पं. ललिताप्रसादजीने इसकी भाषाटीकाका निर्माण किया था । जगत् प्रसिद्ध श्रीवेंकटेश्वर प्रेसके स्वत्वाधिकारी सनातन धर्म भूषण **रावसाहिब श्रीमान् सेठ रंगनाथजी श्रीनिवासजीने** इस ग्रन्थके संशोधनके लिये मुझे प्रेरणा की । यह इन्हींकी प्रेरणाका फल है जो कि इस ग्रन्थको इस रूपमें रख रहा हूं ।

मुद्रणके समय अशुद्धियां होनेके कितनेही कारण हुआ करते हैं । यदि दृष्टिदोष अथवा मुद्रणके दोषसे जो अशुद्धियां हुई हों, विज्ञ पाठक हमारे उद्देशकी ओर ध्यान देते हुए उन्हें क्षमा करके सूचित करेंगे ताकि अगले संस्करणमें सँभालदी जासकें ।

परमार्थी वैद्योंका सेवक—**माधवाचार्य.**

श्रीः ।

वैद्यकपरिभाषाप्रदीप-

विषयानुक्रमणिका ।

परिभाषाकी संज्ञा।

विषयानुक्रमणिका।

इति

वैद्यकपरिभाषाप्रदीप विषयानुक्रमणिका

समाप्ता ।

श्रीः ।

वैद्यकपरिभाषाप्रदीप।

भाषाटीकासमेत।

अनुबन्ध चतुष्टय ।

नमोऽस्तु नीरदस्वच्छवपुषे पीतवाससे ।
यस्यास्येन्दुसुधां वंशी पपौ शब्दस्वरूपिणी ॥१॥

दोहा—राधावर जलधरवरण, सुन्दर श्याम शरीर ।
मुखप्रफुल्ल मोहन मयन, हरे दासकी पीर ॥

वर्षाकालके बद्दलके समान स्वच्छ श्याम शरीरवाले पीतांबरधारी भगवान् कृष्णके लिये नमस्कार है. जिसके कि, मुखचन्द्रके अधरामृतका पान, सामवेदने स्वयं वंशी बनकर किया था ॥ १ ॥

कृष्णवल्लभसेनस्य तनुजेन वितन्यते ।
श्रीमद्गोविन्दसेनेन परिभाषाप्रदीपकः ॥ २ ॥

मैं श्रीकृष्णवल्लभसेनका पुत्र श्रीमद्गोविन्दसेन **परिभाषाप्रदीप** नामक ग्रन्थको बनाता हूं ॥ २ ॥

पूर्वैर्मुनिभिरादिष्टा स्वे स्वे तन्त्रे क्वचित् क्वचित् ।
परिभाषा मया सा सा समाहृत्य विलिख्यते ॥ ३ ॥

यह मैं नवीन नहीं कर रहा हूं किन्तु पूर्वकालके आयुर्वेदाचार्य मुनियोंने अपने २ बनाए ग्रन्थोंमें कहीं २ जो परिभाषाएँ लिखी हैं, उन्हींका सारमर्म संग्रहण करकेही यह ग्रन्थ लिखा जाता है ॥ ३ ॥

ध्वान्ते पथि चरिष्णूनां यथा दीपः प्रदर्शकः ।
नानाशास्त्रज्ञभिषजां संग्रहोऽयं तथा भवेत् ॥ ४ ॥

अन्धकारमें रास्ता चलनेवाले पथिकके लिये मार्गका दिखानेवाला दीपकही होता है, उसी तरह अनेक शास्त्रोंके जाननेवाले वैद्योंके लिये यह परिभाषा प्रदीप नामक ग्रन्थ, आयुर्वेद शास्त्रमें प्रवेश करनेके लिये मार्ग दिखानेवाला होगा ॥ ४ ॥

खण्डैश्चतुर्भिरादिष्टः संग्रहो नातिविस्तरः ।
वैद्याः कुर्वन्त्वत्र यत्नं व्यवहारार्थमुद्यताः ॥ ५ ॥

यह परिभाषाप्रदीप ग्रंथ बहुत न बढाकर केवल चार खण्डोंमेंही कहदिया है । चिकित्सा करनेके लिये तैयार हुए वैद्योंको इस ग्रन्थमें अवश्य प्रयत्न करना चाहिये ॥ ५ ॥

अव्यक्तानुक्तलेशोक्तसन्दिग्धार्थप्रकाशिकाः ।
परिभाषाः प्रकथ्यन्ते दीपीभूताः सुनिश्चिताः ॥६ ॥

आयुर्वेदमें बहुतसे विषय कहे तो गये हैं पर स्पष्ट नहीं कहे गये, कुछ आवश्यक बातें कही भी नहीं गईं, जिनके बारेमें बहुत कुछ कहना चाहिये था उनके विषयमें बहुतही थोड़ा कहा गया है । बहुतसे विषय कहे तो गये हैं पर सन्देहजनक रीतिसे कहे गये हैं । हमारी संगृहीत परिभाषाएं उन सबोंपर प्रकाश डालेगी क्योंकि, ये

स्वभावसेही प्रकाशक हैं इनमें कोई सन्देह नहीं रहजाता क्योंकि, खूब निश्चय करके लिखी गई हैं ॥ ६ ॥

तोल।

तस्माच्च द्विविधं मानं कालिङ्गं मागधं तथा।
कालिङ्गान्मागधं श्रेष्ठमेवं मानविदो विदुः ॥ ७ ॥

सबसे पहिले मान कहते हैं– कालिङ्ग मान और मागधमान यह दो प्रकारके मान यानी तोल हैं, इनमें कालिंगमानसे मागधमान श्रेष्ठ है। ऐसा मानके जाननेवाले कहते हैं, इस कारण सबने मागधमानको पहिले कहा है अतः हम भी मागध ही कहते हैं ॥ ७ ॥

तोलकी उपयोगिता।

परिमाणं विना क्वापि नौषधाज्जायते फलम्।
तस्मात्सर्वे यतन्तेऽत्र परिमाणविधौ सदा ॥ ८ ॥

इसके लिखनेका यह कारण है कि, परिमाणके विना औषधिसे कभी भी आरोग्यरूप फल नहीं होता। इस कारण सदा सब पहिले परिमाणकी विधिमें ही प्रयत्न करते हैं ॥ ८ ॥

शार्ङ्गधरस्त्वाह–

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित्।
अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ॥ ९ ॥

इसीपर शार्ङ्गधरका मत–प्रथमाध्यायमें शार्ङ्गधर तो कहते हैं कि, परिमित रूपसे प्रयोग किये विना किसी भी द्रव्यके प्रयोगसे फल नहीं होसकता। सबका विना किसी कष्टके उचित प्रयोग होसके इस कारण हम मान कहते हैं ॥ ९ ॥

अन्यच्च-

मानापेक्षितमाचार्य्यो भेषजानां प्रकल्पनम्।
मेनिरे यत्ततो मानमुच्यते पारिभाषिकम्॥इति॥१०॥

दूसरे ग्रंथमें भी कहा है कि, आयुर्वेदाचार्योंने बताई हुई तोलके अनुसारही ओषधियोंका प्रयोग माना है इस कारण वैद्यककी तोलकी परिभाषाओंमें आई हुई तोल बताई जाती हैं॥ १० ॥

मागधपरिभाषा।

जालान्तरगतैः सूर्यकरैर्वंशी[1] विलोक्यते।
षड्वंशीभिर्मरीचिः[2] स्यात्ताभिः षड्भिस्तु राजिका ११

मतभेदसे परिमाण (तोल) अनेक प्रकारका है; पहिले मागध देशके तोल कहते हैं—जालीसे गृहमें सूर्यकी किरणें गिरती हैं उनमें चलते फिरते धूलके कण (त्रसरेणु) देखे जाते हैं, इनके एकको ध्वंसी तथा तीसवें भागको परमाणु कहते हैं। उन छः ध्वंसियोंकी एक मरीचि एवम् छः मरीचिकी एक राजिका (राई) होती है ॥ ११ ॥

तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः।
यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुञ्जा स्यात्तच्चतुष्टयम् ॥ १२ ॥
षड्भिस्तु रत्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधामकौ।
माषैश्चतुर्भिः शानः स्याद्धरणं तन्निगद्यते ॥ १३ ॥
टङ्कः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते।
क्षुद्रभो[3]रटकश्चापि द्रंक्षणं स निगद्यते ॥ १४ ॥

---

१ ध्वंसी। २ ध्वंसीभिः। ३ क्षुद्रको वटकश्चैव-शा. क्षुद्रभो वटकश्चैव सुश्रुत० ३ भाग। इति च पाठान्तरम्।

कोलद्वयं च कर्षः स्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिकः ।
अक्षः पिचुः पाणितलं किञ्चित्पाणिश्च तिन्दुकम्॥१५॥
विडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता ।
करमध्यं हंसपदं सुवर्णं कवलग्रहम् ॥
उडुम्बरश्च पर्यायैः कर्ष एव निगद्यते ॥ १६ ॥

तीन राजिकाकी एक (गौर) सरसों, आठ सरसोंका एक जौ, चार जौका एक गुंजा (रत्ती) और छः रत्तीका एक मासा होता है । इसे हेम और धामकभी कहते हैं, चार मासेका एक शान ब्रिटिश भारतकी सरकारी तोलसे चौहन्नीभर होता है, इसे धरण और टंकभी कहते हैं । दो शानका एक कोल (अठन्नीभर) होता है। इसका दूसरा नाम क्षुद्र, मोरटक और द्रंक्षण हैं । दो कोलका एक कर्ष (१ तोला) होता है, इसे पाणिमानिक, अक्ष, पिचु, पाणितल, किंचित्पाणि, तिन्दुक, विडालपदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपद, सुवर्ण, कवलग्रह और उडुम्बर भी कहते हैं ॥ १२–१६ ॥

स्यात्कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ॥ १७ ॥
शुक्तिभ्याञ्च पलं ज्ञेयं मुष्टिमात्रञ्चतुर्थिकाः ।
प्रकुञ्चः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥ १८ ॥

दो कर्षका एक अर्द्धपल (२ तोला) होता है, इसे शुक्ति और अष्टमिका भी कहते हैं । दो अर्द्धपल या दो शुक्तिका एकपल (४ तोला) होता है, मुष्टिमात्र, चतुर्थिका, प्रकुञ्च, षोडशी और बिल्व ये पलके दूसरे नाम हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

---

१ पाणिका बुधैः । २ याज्ञवल्क्यने छःका माना है । ३ तीन जौ या बिचले तीन जौभर गुंजा माना है । ४ मुष्टिरामम् । इति पा० ।

पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते ।
प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात् कुडवोऽर्द्धशरावकः ॥ १९॥
अष्टमानश्च स ज्ञेयः कुडवाभ्याञ्च मानिका ।
शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥ २० ॥

दो पलकी एक प्रसृति होती है, इसका दूसरा नाम प्रसृत है। दो प्रसृतिकी एक अंजलि होती है इसके दूसरे नाम कुडव, अर्द्धशराव और अष्टमान हैं। दो कुडवकी एक मानिका होती है इसे शराव और अष्टपल भी कहते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाढकम् ।
भाजनं कंसपात्रं च चतुःषष्टिपलश्च तत ॥ २१ ॥

दो शरावका एक प्रस्थ, चार प्रस्थका एक आढक होता है, इसे भाजन और कंस पात्र भी कहते हैं। यह ६४ पलका होता है॥२१॥

चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोऽर्म्मणः ।
उन्मानश्च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञकाः ॥ २२ ॥

चार आढकका द्रोण होता है. इसके कलश, नल्वण, अर्म्मण, उन्मान, घट और राशि ये दूसरे नाम हैं ॥ २२ ॥

द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकाः ।
शूर्पाभ्याञ्च भवेद् द्रोणी बृहद्द्रोणी च सा स्मृता[1]॥२३

दो द्रोणका एक सूर्प होता है, इसका दूसरा नाम कुंभ है॥ (शरावके हिसाबसे यह ६४ शरावका होता है) दो सूपकी एक द्रोणी होती है. इसका दूसरा नाम बृहत् द्रोणी है इसे वाह और गोणी भी कहते हैं ॥ २३ ॥

---

१ वाहो गोणी च सा स्मृता । इति पा० ।

द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः।
चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा ॥ २४ ॥

चार द्रोणीकी एक खारी होती है, इसमें चार हजार छ्यानवे (४०९६) पल होते हैं ॥ २४ ॥

पलानां द्विसहस्रञ्च भार एकः प्रकीर्तितः।
तुला पलशतं ज्ञेया सर्वत्रैष विनिश्चयः ॥ २५ ॥

दो हजार पलका एक भार होता है। सौ पलकी एक तुला होती है, यह सब जगहकाही निश्चय है ॥ २५ ॥

माषटङ्काक्षबिल्वानि कुडवः प्रस्थ आढकः।
राशिर्द्रोणी च खरिका यथोत्तरचतुर्गुणाः ॥ २६ ॥

माषा, टंक (शान), अक्ष (कर्ष), विल्व, कुडव, प्रस्थ, आढक, राशि, द्रोणी और खारी ये क्रमानुसार पहिलेसे दूसरा चौगुना २ अधिक है अर्थात् मासेसे टंक चतुर्गुण, टंकसे अक्ष चतुर्गुण, अक्षसे विल्व चतुर्गुण और कुडवसे प्रस्थ चतुर्गुण होता है। इसी तरह दूसरे समझने ॥ २६ ॥

मगध मानकी आधुनिक सरकारीमानसे तुलना।

जितनी भी मानगणना प्रारंभ होती हैं वे सबसे छोटे अणुसे प्रारंभ होकर लेखकके अभीष्ट तक चलीजाती हैं। मागध मानकी गणना ही अणुसे ही प्रारंभ होती है, जैसे कि–" ३० परमाणुका एक त्रस-रेणु तथा ६ त्रसरेणुकी एकमरीचि (रेतीकण) एवम् छः मरीचिकी एक राई होती है" यह लिखा है। मान तोलको कहते हैं जबतक

वो व्यवहारके रूपकी न हो तबतक उससे विशेष प्रयोजन सिद्ध नहीं होजाता. इस कारण इसे मौजूदा सरकारी पक्की तोलसे मिला देते हैं जैसा कि, भारतमें अंग्रेजी तोलका व्यवहार है।

तीन राईभर एक सरसों तथा आठ सरसों भर एक जौ तथा चार जौ भर एक गुंजा होता है, गुंजासे अगाड़ी विशेष तोल शुरू होती है. इसे रत्ती भी कहते हैं। आजके एक तोलेमें ९६ रत्ती होती हैं, आठ रत्तीका एक मासा होता है एवम् बारह मासेका एक तोला होता है, इस तरह एक तोलामें ९६ गुंजा या रत्ती होजाती हैं। सुनारोंका इसी तोलसे व्यवहार होता है। अस्सी तोलेका एक सेर होता है। हम सब तोलोंका इसीसे मिलान करेंगे।

मागध६ रत्तीका मासा होता है. वर्तमान पौनमासा ही हुआ, मागध चार मासे वर्तमान तीन मासे होते हैं। मागध चार मासेका 'शान' चौहन्नी भरही हुआ। इस हिसाबसे वर्तमान आठआने भर कोल तथा रुपयाभर कर्ष हुआ। इस तरह चार तोले भर पल, आठ तोले भर प्रसृत तथा सोलह तोलेभर अंजलि होगी। इसका दूसरा नाम कुडव भी है। यह १६ तोलेभर तथा पोंसेरा २० तोले भर होता है इस तरह आजका यह 'कुड़व' एक तोले ऊपर पौन पाव होता है। ३२ तोले भर 'मानिया' जो कि,आजके आठ आना भर कम साढे छः छटांक होता है तथा ६४ तोले भर प्रस्थ होता है। यह आजके एक तोले कम १३ छटांक होता है। चार प्रस्थ यानी ३$\frac{१}{५}$ सेर अर्थात् तीनसेर तीन छटांक और एक तोले भर आढक होता है, ४ आढक यानी बारह सेर बारह छटांक चार तोले भर एक द्रोण होता है। दो द्रोण

यानी २५ सेर ९ छटांक तीन तोले भर शूर्प होता है। दो शूर्प यानी 'एक' मन ग्यारह सेर तीन छटांक एक तोले भरकी एक द्रोणी होती है। चार द्रोणी यानी पांच मन चार सेर बारह छटांक चार तोले भर एक खारी होती है। दोहजार पल यानी आठ हजार तोले भर अर्थात् ढाई मनका एक भार होता है'॥ इति मागधपरिभाषा॥

आर्द्रद्रव्यको दूना करना।

गुञ्जादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडवस्थितिः।
द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम्॥ २७॥
प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं[1] द्रवार्द्रयोः।
मानं तथा तुलायाश्च द्विगुणं न क्वचित्स्मृतम्॥२८॥

जल आदि द्रव पदार्थ तथा गीली औषध और शुष्क द्रव्य जहां कहीं एक रत्तीसे लेकर भलेही कुडवतक भी कह दिये गये हों, सूखे हों या गीले बराबरही ले पर प्रस्थसे लेकर तुलातक चाहे कितना भी कहा गया हो सूखी औषधिकी अपेक्षा गीली दूनी लेनी चाहिये।तुलासे अगाड़ी दूना लेना कहीं भी नहीं कहा है॥ २७॥ २८॥

कुडव पात्र।

मृद्वृक्षवेणुलौहादेर्भाण्डं यच्चतुरङ्गुलम्।
विस्तीर्णश्च तथोर्ध्वश्च तन्मानं कुडवं वदेत्॥२९॥

मिट्टी, वृक्ष, वांस और लोहेका बना हुआ पात्र, चार अंगुल लम्बा, चार अंगुल चौडा और चार अंगुल ऊंचा हो इस पात्रमें जितना जल अथवा तरल द्रव्य आसकता है। इसे कुडव भर कहते हैं॥ २९॥

---

१ तद् इति पा०।

**यदौषधन्तु प्रथमं यस्य योगस्य कथ्यते ।
तन्नामैव स योगो हि कथ्यते तत्र निश्चयः ॥३०॥**

औषधिका योग (नाम) कहनेके समय इस योगके पहले जिस औषधिका वर्णन हो, उस द्रव्यके नामानुसार इस योगका नाम निश्चय होगा। जैसे " दार्व्यादि पाचन " के पहिले दार्वी (दारु-हलदी), कलिंग (इन्द्रजौ), मजीठ, बृहती, दारु, गुडूची इस प्रकार लिखा रहनेसे उक्त दार्वीके प्रथम रहनेसे इसका नाम दार्व्यादि-पाचन हुआ है ॥ ३० ॥

कलिङ्ग परिभाषा ।

त्रसरेणुस्तु विज्ञेयस्त्रिंशद्भिः परमाणुभिः । त्रस-रेणुस्तु पर्य्यायो नाम ध्वंसी निगद्यते ॥ ३१ ॥ षड्ध्वंसीभिर्मरीचिः स्यात् षण्मरीच्यस्तु राजिका[२]। तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः ॥३२ ॥ यवोऽष्टसर्षपैः[३] प्रोक्तो गुञ्जास्यात्त-च्चतुष्टयम् । माषा[४] गुञ्जाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत्क्वचित् ॥ ३३ ॥ हेमश्च धामकश्चैव पर्य्या-यस्तस्य कीर्तितः । चतुर्भिर्माषकैः शाणः स निष्कष्टङ्क एव च ॥ ३४ ॥ धरणशब्दोऽत्र बोध्यः, अन्यत्र शाणपर्य्याये लिखितत्वात् ॥ गद्याणो माषकैः षड्भिः कर्षः स्यादशमाषकः॥३५॥

१ असौ वि । २ सर्षपः । ३ षट् सर्षपैर्यवस्त्रेको गुञ्जैका च यवैस्त्रिभिः ।
४ गुंजाभिर्दशभिः प्रोक्तो 'माषको' ब्रह्मणा पुरा । इति च पाठान्तरम् ।

तीस परमाणुओंका एक त्रसरेणु होता है, वंशी और ध्वंसी भी इसे कहते हैं, छः त्रसरेणुकी एक मरीचि (रेतीकण) होती है, छः मरीचिकी एक राई होती है। तीन राईकी एक सरसों तथा आठ सरसोंका एक यव एवम् चार जौका एक गुंजा (रत्ती) होता है। कोई आठ गुंजाका मासा तथा कोई कोई सात गुंजेका एक मासा मानते हैं, इसीके दूसरे नाम हेम और धामक भी हैं। चार मासेका एक शाण होता है इसीको निष्क और टंकभी कहते हैं, कहीं २ इसे धरण भी कहा है इस कारण यह भी इसका नाम है, ६ मासेका एक गद्याण तथा १० मासेका एक कर्ष होता है। अथवा यों समझिये कि, दो शाणका एक द्रंक्षण होता है इसे कोल और वटक भी कहते हैं ॥३१-३५॥

शाणौ द्वौ द्रंक्षणं विद्यात् कोलं वटकमेव च।
कर्षार्धं द्विगुणं कर्ष सुवर्णं चाक्षमेव च।
बिडालपदकं चैव पिचुः पाणितलं तथा।
उदुम्बरं तिन्दुकं च कवडग्रहमेव च॥ ३६॥

यह कर्षका आधा है इसका दुगुना कर्ष होता है, इसे सुवर्ण अक्ष, बिडालपदक, पिचु, पाणितल, उदुम्बर, तिन्दुक और कवड-ग्रह भी कहते हैं ॥ ३६ ॥

द्वे सुवर्णे पलार्धं स्यात् शुक्तिरष्टमिका तथा॥ ३७॥
द्वे पलार्धे पलं मुष्टिः प्रकुञ्चश्च चतुर्थिका।
बिल्वं षोडशिकाम्रं च द्वे पले प्रसृतं विदुः ॥ ३८॥
कुडवः प्रसृताभ्यां स्यादञ्जलिः स निगद्यते।
अष्टमानं शरावार्धं तस्य पर्य्याय एव च॥ ३९॥

कुडवाभ्यां मानिका स्याच्छरावोऽष्टपलं तथा।
मानिकाभ्यां भवेत् प्रस्थो ज्ञेयः षोडशभिः पलैः॥४०॥

दो कर्षोंका आधापल होता है, इसे शुक्ति और अष्टमिका भी कहते हैं। दो आधे पल या दो शुक्तियोंका एक पल होता है इसे मुष्टि, प्रकुंच, चतुर्थिका, बिल्व, षोडशिका और आम्र कहते हैं। दो पलोंका एक प्रसृत, दो प्रसृतोंका एक कुडव होता है; इसे अंजलि अष्ट मान और शरावार्धभी कहते हैं। दो कुडवोंकी एक मानिका होती है इसे शराव और अष्टपल भी कहते हैं। दो मानिकाओंका एक प्रस्थ होता है इसमें सोलह पल होते हैं॥ ३७–४०॥

चतुःप्रस्थैराढकः स्यात्पात्रं कंसश्च भाजनम्॥
अयं भिषग्भिराख्यातश्चतुष्षष्टिपलैरिह॥ ४१॥
चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कथितः पूर्वसूरिभिः।
घटः कलश उन्मानो लवणोऽर्म्मण एव च॥ ४२॥
द्रोणपर्यायनामानि कीर्त्तितानि भिषग्वरैः।
अयं च पलसंख्यातः षट्पंचाशच्छतद्वयम्॥४३॥
द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकः।
शूर्पाभ्याञ्च भवेद्द्रोणी बृहद्द्रोणी च सा स्मृता॥४४
द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः।
चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा॥ ४५॥
तुलापलशतं प्रोक्तं भारः स्याद्विंशतिस्तुला।
पलानां द्विसहस्रैश्च भारः परिमितो बुधैः॥ ४६॥

चार प्रस्थ(६४ पल)का एक आढक होता है,इसे पात्र, कंस और भाजन भी कहते हैं। चार आढक या२५६ पलका एक द्रोण होता है,

इसे वट, कलश, उन्मान, लल्वण और अर्मण भी कहते हैं। दो द्रोण या ६४ शरावका एक सूर्प होता है, इसका दूसरा नाम कुम्भ भी है। दो सूर्पकी एक द्रोणी होती है, इसका दूसरा नाम बृहत् द्रोणी हैं। चार द्रोणी या चार हजार छियानवे पलकी एक खारी होती है, ऐसा चतुर वैद्योंने कहा है। एक शत पलकी एक तुला, बीस तुला या दो हजार पलका एक भार होता है॥ ४१--४६॥

×कलिङ्ग मानके साथ वर्तमान मानकी समता।

यह हम पहिले ही कह चुके हैं कि, आठ गुंजोंका एक मासा तथा बारह मासेका एक तोला होता है इस तरह एक तोला ९६ रत्ती या गुंजा भी होता है। ये आठ गुंजोंका एक मासा मानते हैं. यही आजका भी मासा है। ये जो सात गुंजों भर एक मासा मानते हैं इसका विचार पीछे करेंगे, चार मासेका एक शाण, जो कि चार आना आठरत्ती भर होता है यह मगधके शाणसे ८ रत्ती अधिक होता है। छः मासे भर

× याज्ञवल्क्य स्मृतिमें जो मान आया है वो इसीसे मिलता जुलता हुआ है उसका सुवर्ण अस्सी रत्तीका बैठता है जैसा कि कलिंग मानका है। रजत मानमें २ गुंजाओंका एकमासा मान कर १६ मासोंका एक धरण होता है, जोकि ३२ रत्तीका होता है इतना ही कलिंगमानमें मानते हैं १० धरणका एक शतमान जो कि कलिंग मानका एक पल होजाता है इसका दूसरा नाम शतमान भी कहीं व्यवहृत होता है तथा निष्क भी कहाता है। मानका विषय प्रायः दण्ड व्यवस्था आदि विषयोंमें धर्म शास्त्रोंमें भी आता है। व्रतराजमें जो मानका विषय आया है वो इसी कलिंग मानको लेकर ही मूलकारने कहा ऐसा प्रतीत होता है यहां हमने इस पर यथेष्ट प्रकाश डाल दिया है, सब जगह इसे मिलाकर पढाजाय तो विशेष लाभ होगा, व्रतराजकी टीकामें हमने इसे वैद्यकका विषय समझ विस्तारके भयसे विशेष परिस्फुट नहीं किया था। (५ तोलेके पल माननेमें ८० तो. १ प्रस्थ होगा)

एक गद्याण होता है, यह वर्तमानका आधतोले हो गया । १० मासा यानी ८० गुंजाभर १ कर्ष होता है. यह कलिंग कर्ष मगधके कर्षसे १६रत्ती कमका होता है, इस तरह कलिंग कर्ष १३ आने २ रत्ती भर होता है ४ कर्ष यानी ३$\frac{१}{३}$ तोले यानी ३ तोले ५ आना और दो रत्ती भरका एक पल होता है । दो पल यानी ६ तोले १० आना ४ रत्ती भर एक प्रसृत होता है । दो प्रसृत यानी १३ तोले ५ आने और दो रत्ती भर एक अंजलि होती है । दो अंजलि यानी २६ तोले १० आने ४ रत्ती भर १ मानिका होती है, यह मगधकी मानिकासे ५ तोले ५ आने और दो रत्ती भर कम होती है । दो मानिका यानी ५३ तोले ५ आने २ रत्ती भर एक प्रस्थ होता है, कलिंग प्रस्थ मगध प्रस्थसे ९ तोले दश आने ४ रत्ती भर कम होता है । वर्तमान प्रस्थसे २६ तोले १० आने ४ रत्ती भर कम होता हैं । चार प्रस्थ यानी २१३ तोले ५ आने २ रत्ती भरका एक आढक होता है । यह दो सेर १० छटांक ३ तोले ५ आने और २ रत्ती भर होता हैं । चार आढक यानी १० सेर १० छटांक ३ तोले ५ आने २ रत्ती भर १ द्रोण होता है । २ द्रोण यानी २१ सेर ५ छ. १ तो. १० आने ४ रत्ती भरका एक शूर्प होता है । दो शूर्प यानी १ म. २ सेर १० छ. ३ तोले ५ आ. २ रत्ती भरकी एक द्रोणी होती है । ४ द्रोणी यानी ४ मन १० से. ८ छ. १३ तो. ५ आ. २ रत्ती भरकी एक खारी होती है । सो पल यानी चार सेर ३ तोले ५ आणे २ रत्ती भर एक तुला होती है । बीस तुला यानी २ मन ३ सेर ५ छ: १ तोले ७ आने २ रत्ती भरका एक भार होता है पर मागध भार ढाईमनका होता है ।

माषकः शानतिन्दूके पलं कुडवप्रस्थकः।
राशिर्द्रोणी खारी चेति यथोत्तरं चतुर्गुणाः ॥४७॥

माषक, शान, कर्ष, पल, कुडव, प्रस्थ, राशि, द्रोणी और खारी यह उत्तरोत्तर क्रमानुसार पहिलेसे दूसरा चौगुना है अर्थात् माषकसे शान चौगुना है, शानसे तिन्दुक (कर्ष) चतुर्गुण है तिन्दुकसे पल चतुर्गुण हैं इसी तरह दूसरेभी समझने चाहिये ॥ ४७ ॥

औषधका ग्रहण।

शुष्कद्रव्येष्विदं मानं द्विगुणञ्च द्रवार्द्रयोः।
ज्ञातव्यं कुडवादूर्द्ध्वं प्रस्थादिश्रुतिमानतः ॥ ४८ ॥

वैद्यकके ग्रन्थोंमें रत्तीसे लेकर कुडव तक तो सूखे, गीले सब द्रव्य बराबर ले लेने चाहिये, पर जहां नुकसोंमें जहां प्रस्थका हिसाब हो सूखी चीजसे गीली दूनी ग्रहण करनी चाहिये ऐसा उच्च ग्रन्थोंका मत है॥४८

---

१ कुड़व भी कहां दूना हो।

कुड़व कहां दूना लिया जाय कहां न लिया जाय इसका विस्तारके साथ निश्चय करते हैं। इसके विषयमें किसीका कथन है कि, परिभाषामें आये हुए 'कुडवादूर्ध्वम्' इसमें जो कुडव शब्दसे पंचमी है वह ल्यबन्त गम्यमान 'अभिव्याप्य' पदके बलसे जिसका यह सीधा अर्थ होता है कि, कुडवको लेकर कथित शुष्क द्रव्यका दूना गीला लेना चाहिये। क्योंकि, हमें ऐसे वचन मिलते हैं कि–

गुञ्जादिमानमारभ्य यावत्स्यात् कुडवस्थितिः।
द्रव्यार्द्रशुष्कद्रव्येषु तुल्यं मानं प्रकीर्तितम् ॥–

शुष्कद्रव्ये तु या मात्रा चार्द्रस्य द्विगुणा हि सा ।
शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णत्वात्तस्मादर्द्धं प्रकीर्त्तितम् ॥४९

शुष्क द्रव्यके ग्रहण करनेका जितना परिमाण लिखा हो यदि उसकी जगह गीला द्रव्य मिले तो कहे हुए परिमाणसे दूना ग्रहण करना चाहिये । पर जहां गीले द्रव्यके ग्रहण करनेकी विधि हो वहां सूखा द्रव्य ग्रहण करना हो तो, उसके भारी और तीक्ष्णादि गुणका विचार करके सूखे द्रव्यका आधा वजनही ग्रहण करे ॥ ४९ ॥

–रत्तीसे लेकर जबतक कुडव न हो तबतक तो कथित सूखे गीले दोनों बराबर लेने चाहियें, कुडवके होजानेपर तो सूखेका दूना गीला लेना चाहिये । यद्यपि इस श्लोकमें यावत्से थोड़ा सन्देह रह जाता है पर निम्न श्लोकमें तो साक्षात् 'न' पड़ा है कि–

"रत्तिकादिषु मानेषु यावन्न कुडवो भवेत् ।
शुष्के द्रवार्द्रयोस्तावत् तुल्यं मानं प्रकीर्तितम् ॥

रत्तिकादिक मानोंमें जबतक 'कुडव' नहीं होता तबतक शुष्कसे दूनी गीली और आर्द्र लेना चाहिये पर कुडव होनेपर नहीं । कुडवको लेकर दुगुना कहनेसे कुड़वको दूना लेना श्रीनिश्चलकरने कह दिया है, तबही ये वचन भी सार्थक होता है कि–

"सर्पिःखण्डजलक्षौद्रतैलक्षीरासवादिषु ।
अष्टौ पलानि कुडवो नारिकेले च शस्यते ॥

नारिकेल और घी, खांड, जल, शहद, तेल, क्षीर आदिमें आठ पलका कुड़व लेनाही अच्छा होता है, कुडव चार पलका होता है, उसे फिर आठ पलका कहना दूना ही कहना है । यद्यपि यह वचन व्यापक नहीं प्रतीत होता, क्यों कि, इसके बारेमें यहीं लिखा है कि–

अनित्या परिभाषेयं यथादर्शनमुच्यते ।
दन्तीघृते कुङ्कुमाद्ये तैलेऽसावुपयुज्यते ॥
न नारिकेले खण्डे च न तैले पलमुच्यते ॥–

वासानिम्बपटोलकेतकिबलाकूष्माण्डकेन्दीवरी
वर्षाभूकुटजाश्वगन्धसहिता सा पूतिगन्धामृता ।
मांसं नागबला सहाचरपुरौ हिंग्वार्द्रके नित्यशः ।
ग्राह्यास्तत्क्षणमेव न द्विगुणिता ये वेक्षुजातागणाः५०

अडूसा, नीम, परवल, केतकी, खरेंटी, पेठा, शतवारी, सांठ (त्रायमाण) कुडा, असगंध, पसरन, गिलोय, मांस, गंगेरन, कटसरैया,

---

–जैसा देखा है वैसा लिखता हूं, पूर्व वाक्यका उपयोग केवल दन्तीघृत और कुंकुमाद्य तैलमेंही होता है । नारिकेल, खण्ड और दूसरे २ तेलोंमें दूना कुडव नहीं लिया जाता, इस कारण इन स्थलोंमें कुडवको दूना दिखानेवाला वाक्य अनित्य है । और अनित्यता बोधक वचन दिखाते हैं कि–

" कुडवे कदाचिद्द्वित्वं यथा दन्तीघृते स्मृतम् "

कुडव भी कभी दूना ले लिया जाता है. जैसा कि, दन्तीघृतमें लिया जाता है । इस वचनने कुडवको दूना जतानेवाले वचनकी अनित्यता तो सिद्ध करदी. यह साक्षाद् यह भी नहीं कहा कि, केवल दन्तीघृतमेंही कुडव दूना लेना चाहिये दूसरी जगह नहीं ॥

इस प्रकारके सन्देहमें सिद्धान्त करते हैं कि, कुडव मानिका पल और तुलाके मानमें कही हुई वस्तु दूनी नहीं ली जासकती ।

इसपर यह वचन भी प्रकाश डालता है कि–

" कुडवे मानिकायां च तुलामाने तथैव च ॥
पलोल्लेखागते माने न द्वैगुण्यमिहेष्यते ॥ "

जो पूर्व दिखा चुके हैं इससे यह निश्चय होगया कि, कुडवको दूना नहीं लिया जासकता । निश्चलकरने जो कुडवको दूना कहा है वो दन्तीघृतके विषयमें कहा है और किसी भी औषधिके विषयमें नहीं है, उसी पक्षमात्रमें ' कुडवादूर्ध्वम् ' की कही व्याख्या गतार्थ होती है ।

१ धना इति च पाठः ।

(पिपावांसा) गुग्गुल, हींग, अदरख और गन्नेसे उत्पन्न हुए द्रव्य (खांड, गुड, चीनी और मिश्री आदि) सदा गीलेही ग्रहण करने चाहिये, इनका दुगना ग्रहण न करे ॥ ५० ॥

गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डश्च शतावरी ।
अश्वगन्धा सहचरी शतपुष्पा प्रसारणी ।
प्रयोक्तव्याः सदैवार्द्रा द्विगुणान्न च कारयेत् ।
(शार्ङ्गधरमतमेतत्) ॥ ५१ ॥

गिलोय, कुडा, अडूसा, पेठा, शतावर, असगन्ध, कटसरैया (पिया-वांसा) सौंफ, पसरन यह सब द्रव्य नये (ताजे) और गीलेही औषधिमें प्रयोग करे । इनको दूना ग्रहण करना ठीक नहीं है । (यह शार्ङ्गधरमें पहिलेही अध्यायमें दिखाया है) ॥ ५१ ॥

वासाकुटजकूष्माण्डशतपुष्पासहामृताः ।
प्रसारण्यश्वगन्धा च नागाख्यातिबलाबलाः ॥ ५१ ॥
नित्यमार्द्राः प्रयोक्तव्या न तासां द्विगुणो भवेत् ॥ ५२ ॥
हस्तीकर्णपलाशवाटचालकगोरक्षतण्डुलाश्चैतत् ।

दूसरेभी कहते हैं कि–तथा विसोंटा (अडूसा), कुडा, पेठा, सौंफ, ग्वारपाठा, गिलोय, पसरन, असगन्ध, गंगेरन, कंघी, हस्तीकर्ण, पलाश, खरेंटी, सहदेई, चौलाई और गोरखमुण्डी इन सब द्रव्योंको सदा गीला ग्रहण करे । इनका नुकसेमें कहे हुएसे दूना ग्रहण करनेका नियम नहीं है ॥ ५२ ॥

द्रव्यकी योग्यता व अयोग्यता।

शुष्कं नवीनं द्रव्यं च योज्यं सकलकर्म्मसु।
आर्द्रञ्च द्विगुणं विद्यादेष सर्वत्र निश्चयः॥५३॥

नवीन शुष्क द्रव्यकाही औषधिमें प्रयोग करे। यदि गीलीका प्रयोग करना आवश्यक हो तो कहे परिमाणका दूना प्रयोग करे। इस मतको सब मानते हैं॥ ५३॥

द्रव्याण्यभिनवान्येव प्रशस्तानि क्रियाविधौ।
ऋते घृतगुडक्षौद्रधान्यकृष्णाविडङ्गकम्॥५४॥

घी, गुड, सहद, धनियां, पीपल और बायविडंगके सिवाय समस्त औषधियां चिकित्सा कार्यमें नवीनही श्रेष्ठ हैं, पर घृतादि द्रव्य जितने पुराने हों उतनेही अधिक फलदायक हैं॥ ५४॥

स्नेह (घृत तैलादि) के गुण दोष।

स्नेहसिद्धो गुडादिश्च गुणहीनोऽब्दतो भवेत्।
स्नेहाद्याः पूर्णवीर्याः स्युराचतुर्मासतः परम्॥५५॥
अब्दादूर्ध्वं घृतं पक्वं हीनवीर्यं तु तद्भवेत्।
तैले विपर्ययं विद्यात्पक्वेऽपक्वे विशेषतः॥५६॥
"तैलमत्र तिलभवं, न सर्षपादिस्नेहसामान्यपरम्"

स्नेहमें पके हुए गुडादिक एक वर्ष पीछे वीर्य हीन होजाते हैं। पर पके हुए तेलआदि चार मासके पीछे पूरे वीर्यको प्राप्त होते हैं। पकाहुआ घी एक वर्षके पीछे वीर्यरहित होजाता है। पका, बे पका दोनों प्रकारका तेल जितना पुराना होगा, उतनाही अधिक फल-

दायक होगा । तेल शब्दसे यहां तिलके तेलकाही ग्रहण होता है, क्योंकि, यह विशेष वाचक है तेल मात्रको नहीं कहता, इस कारण सरसों आदिके तेलका ग्रहण न होगा ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

गुणहीनं भवेद्वर्षादूर्ध्वं तद्रूपमौषधम् ।
मासद्वयात्तथा चूर्णं हीनवीर्यत्वमाप्नुयात् ॥५७॥
हीनत्वं गुटिकालेहौ लभेते वत्सरात्परम् ।
हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकास्तथा ॥५८॥
औषध्यो लघुपाकाः स्युर्न वीर्यं वत्सरात्परम् ।
पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ता आसवं धातवो रसाः ॥५९॥

एक वर्षके पीछे साधारणतः प्रायः किसी भी औषधिमें वीर्य नहीं रहता । चूर्ण की हुई औषधि दो मासके पीछे वीर्यहीन होजाती है । गोलियें, लड्डू और अवलेह एक वर्षके पीछे वीर्यरहित होजाते हैं । चार मासके पीछे घी और तैलादि वीर्यरहित होते हैं । पाकमें हलकी समस्त औषधियें भी एक वर्षके पीछे वीर्यरहित हो जाती हैं । आसव

१–५६ वे श्लोकमें यह कह चुके हैं कि, एक वर्षके बाद पक्व घृत हीनवीर्य्य हो जाता है पर तैल जितना पुराना होगा उतनाही अधिक हितकारी होगा पर अब यहां ५८ वे श्लोकमें कहते हो कि, चतुर्मासके बाद घृत और तैल दोनों निःसार होजाते हैं यह पूर्वापर विरोध कैसे ?

यही समझकर ग्रन्थकारने ५६ वे श्लोकमें आये हुए तैल शब्दसे तिलका ही तैल ग्रहण किया है उसीको पुराने होनेपर अधिक गुणवाला कहते हैं एवम् उससे बने हुए जो तैल होंगे वे पुराने अधिक गुणवाले होंगे । तिलके तेलसे बाकी सरसोंका तेल रहजाता है । इस ५८ वे श्लोकमें उसके बने हुए दशमूलादिक तैलोंका इस तैल शब्दसे ग्रहण होता है । वेही चार माहके बाद निर्वीर्य्य होजाते हैं ।

(मद्यविशेष) धातु द्रव्यादि और पारा जितने पुराने हों उतनेही अधिक गुणदायक है ॥ ९७–९९ ॥

शार्ङ्गधरेणैवोक्तम्–

व्याधेरयुक्तं यद्द्रव्यं गणोक्तमपि तत्यजेत् ।
अनुक्तमपि युक्तं यद्योजयेत्तत्र तद्बुधः ॥ ६० ॥

रोगके लिये जो द्रव्य अयोग्य हो वह यदि गणमें भी कहा हो तो भी उसका ग्रहण न करे। रोगके लिये जो द्रव्य योग्य है, वह यदि गणमें न लिखा हो तो भी बुद्धिमान्को विचारके साथ उसका प्रयोग करलेना चाहिये ॥ ६० ॥

उत्तम देशज औषधियां।

आग्नेया विन्ध्यशैलाद्याः सौम्यो हिमगिरिर्मतः ।
ततस्तान्यौषधानि स्युः प्रशस्तानि क्रियाविधौ ६१

विन्ध्यादि पर्वत आग्नेय गुणवाले हैं। हिमालयादि पर्वत सोमगुणवाले हैं। इन दोनों स्थानोंमें उपजी हुई औषधियोंमें भी ये गुण होंगे। अत एव आग्नेय गुण बढानेके लिये विन्ध्यादि पर्वतोंपर और सौम्यगुण (शीतलता) बढानेके लिये हिमालयादि पर्वतोंपर उत्पन्न हुई औषधियाँही चिकित्सामें श्रेष्ठ है अत एव उन्हें ही लेना चाहिये॥ ६१॥

अन्येष्वपि प्ररोहन्ति वनेषूपवनेषु च ।
गृह्णीयात्तान्यपि भिषग्वने शैले विशेषतः ॥ ६२ ॥

इन पर्वतोंके सिवा दूसरेभी वन, बाग और पवित्रस्थानोंमें औषधि उत्पन्न होती हैं। चिकित्सक उनकोभी ग्रहण कर ले पर बाग वाटिका आदिकी अपेक्षा वन और पर्वतसे विशेषरूपसे ले ॥ ६२ ॥

औषध ग्रहण ।

धन्वसाधारणे वापि गृह्णीयादुत्तराश्रितम् ।
पूर्वाश्रितं वा मतिमानौषधे तद्विचक्षणः ॥ ६३ ॥

धन्व (मरुभूमि और जांगल) तथा साधारण देशोंमें जो औषध उत्पन्न होती हैं, चतुर वैद्यको उचित हैं कि, उत्तर दिशा या पूर्वदिशाकी ओर मुख करके उत्तरसे लगालगा विधिके साथ ग्रहण कर ले॥ ६ ३

धन्व[1]साधारणे देशे मुदा चाचरतः शुचौ ।
अवैकृतमनाक्रान्तं सवीर्यं ग्राह्यमौषधम् ॥ ६४ ॥

धन्व और साधारण देशोंके पवित्र स्थानोंमें जो औषधियां उत्पन्न होती हैं वो यदि अविकृत यानी खराब न हुई हों और कीडे आदिकोंकी न खाई हों यह देखकर उनका आनन्दपूर्वक उत्तरसे ग्रहण करे ॥ ६४ ॥

निषिद्ध देश औषधियां ।

देवतालयवल्मीककूपरथ्याश्मशानजाः ।
अकालतरुमूलोत्था न्यूनाधिकविचिन्तनाः ।
जलाग्निक्रिमिसंक्षुण्णा औषध्यस्तु न सिद्धिदाः ६५

देवालय और बमईके ऊपर जमीहुई, कूएपर जमीहुई, मार्गके निकट जमीहुई, मसानमें उत्पन्न हुई और वृक्षकी जडमेंही पैदा हुई औषधियोंको ग्रहण न करे, अकालमें यानी उत्पन्न होनेके समयको छोडकर और समयही उत्पन्न हुई, अपने आकारसे कहीं छोटी और कहीं बड़ी

---

१ "धन्वः देशविशेषः" मरुभूमिजाङ्गलयोः संसृष्टलक्षणो देश इति । अर्थात् धन्वशब्दसे मरुभूमि और जांगलदेश ये दोनोंही समझे जाते हैं।

देखनेमें आरही हों और जल अग्नि व कीटादिकोंने दूसरी अवस्थाको प्राप्त कर दीं हों ऐसी औषधियोंको चतुर वैद्य ग्रहण न करे. क्योंकि, ये फलदायक नहीं होतीं ॥ ३९ ॥

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोषरमार्गजाः।
जन्तुवह्निहिमव्याप्ता नौषध्यः कार्यसाधिकाः ३६॥

शार्ङ्गधर संहितामें लिखा है कि, वामीके ऊपर, कुत्सित स्थानमें, आनूप देशमें, श्मशानमें, ऊषर स्थानमें या मार्गके निकट जो औषधियां उत्पन्न होती है वे, एवं जो कीडे, आग और शिशिर (शीत) से सताई गईं हों वे औषधियां फलदायक नहीं होतीं। इस कारण ऐसे स्थानोंकी औषधियोंका ग्रहण करना ठीक नहीं है ॥ ६६ ॥

औषधि उखाडनेकी प्रार्थना।

ॐ निवसन्ति हि भूतानि यान्यस्मिन्कानिचिद्द्रुमे।
अपक्रामन्त्वतस्तानि प्रजार्थं पाट्यते द्रुमः॥ ६६॥
ॐ वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरीसृपाः।
ये भूतास्तेऽपसर्पन्तु वृक्षादस्माच्छिवाज्ञया॥ ६८॥

जो कोई भी भूत इस वृक्षपर रहते हों वे यहांसे कहीं और चले जायँ, क्योंकि मैं इस द्रुमको प्रजाके लिये उखाड़ता हूं॥ वेताल, पिशाच, राक्षस, सर्प और जो कोई भी भूत रहते हों वे इस वृक्षसे भगवान् शिवके आदेशसे हटजायँ॥ ६७॥ ६८॥

यह मन्त्रको ओषधि उखाड़नेसे पहिले पढे। इससे भूतोंको भगाया जाता है।

उद्धारणमन्त्र ।

ॐ येन त्वां खनते ब्रह्मा येनेन्द्रो येन केशवः ।
तेनाहं त्वां खनिष्यामि मन्त्रपूतेन पाणिना ॥ ६९ ॥

जिस मन्त्रपूत पाणिसे तुम्हें ब्रह्मा इन्द्र और केशवने खोदा था उसी पवित्र हाथसे मैं भी तुम्हें खोदता हूं, इसे कहता उखाडे ॥६९॥

भूतादिमुक्तयेऽभ्यर्च्य सायं प्रातश्च सम्मुखे ।
श्राद्धैरुपोषितैर्ग्राह्यं भैषजं कर्मकृद्भवेत् ॥ ७० ॥

जो वैद्य श्रद्धापूर्वक उपवासी रहकर सन्ध्या अथवा प्रातःकालके समय शिवकी पूजा कर औषधि लावैगा तो वह विशेष फलदायक होगी ॥

औषधियोंके अंगोंका ग्रहण ।

सारः स्यात्खदिरादीनां निम्बादीनां च वल्कलम् ।
फलन्तु दाडिमादीनां पटोलादेश्छदस्तथा ॥ ७१ ॥

खदिर आदिकोंका सार, नीम आदिकोंका वल्कल, अनार आदिका फल एवम् परवल आदिके पत्ते ग्रहण करने चाहियें ॥ कोई खदिरके साथ आये हुए आदि शब्दसे लालचन्दन श्वेतचन्दन और देवदारु आदि एवम् निम्बके आदिशब्दसे वेल श्योनाक और खंभारी आदिका ग्रहण करते हैं ॥ ७१ ॥

न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः सारः स्याद्बीजकादितः ।
तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात्त्रिफलादितः ॥ ७२ ॥

वड़ आदि वृक्षोंकी त्वचा, विजयसार आदिकोंका सार. तालीस आदिके पत्र एवम्, हरड बहेडा और आंवले आदिका फल ले । वड़के आदि शब्दसे पाखर, आम, जामुन, अम्बाड़े आदि एवम् विजयसारके आदि शब्दसे खैर महुआ वबूर आदि, तालीसके आदि शब्दसे

पत्रज, घीकुमार और पान तथा त्रिफलाके आदि शब्दसे कंकोल, मैनफल और सुपारी आदिका ग्रहण होता है ॥ ७२ ॥

महान्ति यानि मूलानि काष्ठगर्भाणि यानि च।
तेषान्तु वल्कलं ग्राह्यं ह्रस्वमूलानि कृत्स्नशः ॥ ७३ ॥

जिन वृक्षोंकी मूल महान् यानी मोटी है जिनके कि भीतर सारवान् काष्ठ है उनका वक्कल ही ग्रहण करना चाहिये पर छोटे वृक्षोंको मूल, पत्र और पौदे सहित ग्रहण करना चाहिये ॥ ७३ ॥

अतिस्थूलजटायाश्च तासां ग्राह्यास्त्वचो ध्रुवम्।
गृह्णीयात्सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् ॥ ७४ ॥

जो बडे वृक्ष बडी जडवाले हैं उनकी छाल और जो वृक्ष छोटी जड़वाले है उनको जड समेत ग्रहण करले ॥ ७४ ॥

निर्देशः श्रूयते तन्त्रे द्रव्याणां यत्र यादृशः[१]।
तादृशः संविधातव्यः शास्त्राभावे प्रसिद्धितः॥७५॥

औषधि ग्रहण करनेके विषयमें शास्त्रने जिस स्थानमें जैसा अंग ग्रहण करनेकी विधि लिखी है, वहांपर उसका अंगही ग्रहण करे। यदि शास्त्रमें न हो तो जैसा लोकमें होता है वह करले ॥ ७५ ॥

---

१ **अस्यार्थः**--यत्र यत्र द्रव्येषु अंगानामवयवानां यादृशो निर्देशः श्रूयते तादृश एव ग्राह्यः। यथा अमृतादिपाचने-- "अमृताविषपटोलनिम्बपत्रम्" इति। अत्र पत्रमेव ग्राह्यम्। न वल्कलम्, पत्रस्य कण्ठोक्तत्वात्। अङ्गसामान्योक्त्या मूलस्य वल्कलेनैव व्यवहार इति गुरवः। "अंगेऽप्यनुक्ते विहितं तु मूलम्" इति वचनात्॥

शास्त्रमें जिस स्थानपर जैसी विधि कही है, वहांपर वही ग्रहण करे। पहले कहे हुए वचनके अनुसार समस्त कार्य सिद्ध नहीं होता। जैसे अमृतादि पाचनमें नीमके पत्ते लिखे हैं, यहांपर निश्चयही छालको ग्रहण न करके पत्रही ग्रहण करे। औषधि ग्रहण करनेमें यदि किसी स्थानमें अंग (छालमूलादि) न कहे हो वह गुरुके उपदेशके अनुसार कार्य करे॥

राजादिपर प्रयोग करनेका समय।

व्याधिप्रशमने पूर्वं ज्ञापितानि पृथग्जने[1]।
विस्फारितान्यौषधानि[2] पश्चाद्राजनि योजयेत् ॥ ७६ ॥

रोगको दूर करनेवाली औषधि, नवीन तैयार हो तो पहले उसका प्रयोग साधारण लोगोंमें करा परीक्षासे गुण अवगुण जान पीछे राजा आदि बड़े आदमियोंपर प्रयुक्त करे ॥ ७६ ॥

औषधिकी पहिचान।

गोपालतापसव्याधमालाकारवनेचरान्।
पृष्ट्वा नामानि जानीयाद्भेषजानां च शास्त्रतः॥७७॥

औषधिका नाम न जाना हुआ हो तो गोपाल, तपस्वी, व्याध (शिकारी), माली और वनवासी लोगोंसे पूछकर औषधिका नाम जाने तथा शास्त्रसे भी जाननेकी चेष्टा करे ॥ ७७ ॥

ऋतुके अनुसार अंगग्रहण।

शरद्यखिलकर्मार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम्।
विरेकवमनार्थं तु वसन्तान्ते समाहरेत् ॥ ७८ ॥

शरद् ऋतुमें सारे कामोंमें सरस औषध ग्रहण करनी चाहिये क्यों कि, इन दिनोंमें ये सब गुणों एवं सब रसोंसे पूर्ण होती हैं पर वमन और विरेचनके लिये ग्रीष्मकालमें ग्रहण करे ॥ ७८ ॥

मूलानि शिशिरे ग्रीष्मे पत्रं वर्षावसन्तयोः।
त्वक्कन्दौ शरदि क्षीरं यथर्तु कुसुमं फलम् ॥
हेमन्ते सारमौषध्या गृह्णीयात्कुशलो भिषक् ॥ ७९ ॥

---

१ पृथग्जने—जनान्तरे। २ विस्फारितानि--विशेषेण स्फूर्त्तानि ॥

" तेषां शाखा पलाशमचिरप्ररूढं वर्षावसन्तयोर्ग्राह्यम्, ग्रीष्मे मूलानि शिशिरे वा शीर्णप्ररूढपर्णानाम्, शरदि त्वक्कन्दक्षीराणि, हेमन्ते साराणि, पुष्पफलमिति, " [चरक कल्पस्थान]

ग्रीष्म और शीत कालमें औषधियोंका मूल[1] लेना चाहीये, डाली या पत्रे लेने हों तो वसन्त और वर्षा ऋतुमें ले, शरद ऋतुमें वृक्षोंके छिलके कन्द और दूध लेना चाहिये, हेमन्त ऋतुमें सार–गोंद, लेना चाहिये तथा जब फूल फल लगें तब उसी ऋतुमें उनका ग्रहण कहना चाहिये ॥ ७९ ॥

सामान्यमें विशेष ग्रहण।

पात्रोक्तौ चापि मृत्पात्रमुत्पले नीलमुत्पलम्।
शकृद्रसे गोमयरसं चन्दने रक्तचन्दनम् ॥ ८० ॥
सिद्धार्थः सर्षपे ग्राह्यो लवणे सैन्धवं मतम्।
मूत्रे गोमूत्रमादेयं विशेषो यत्र नेरितः ॥ ८१ ॥
पयःसर्पिःप्रयोगेषु गव्यमेव प्रशस्यते।
स्त्रियश्चतुष्पदे ग्राह्याः पुमांसो विहगेषु च ॥ ८२ ॥
जाङ्गलानां वयःस्थानां चर्म्मरोमनखादिकम्।
हित्वा ग्राह्यं पूतमांसं सास्थिकं खण्डशः कृतम् ८३
पक्तव्यमाजमांसं च विधिना घृततैलयोः।
हित्वा स्त्रीपुरुषं चापि क्लीबं तत्रापि दापयेत् ॥८४॥

---

१ मूल और कन्दमें भेद यह है कि, जिस वृक्षमें एकही मूल होता है उसे मूल कहते हैं, यथा–रासना भारंगी आदि। जिन वृक्षोंमें बहुत जडे होती हैं अथवा जड़के स्थान गोलाकार और बड़ा होताहै उन्हें कन्द कहतेहैं, जैसे चीता शतावरी आदि. बहुत जड़वाली और जिमीकन्द व विदारीकन्द आदि गोलाकार युक्त बड़े होतेहैं।

बलिनश्च वयःस्थश्च सुवीर्यश्च सुदेहिनम् ।
न वृद्धश्च न बालश्च अवीर्यं स्रावशोणितम् ॥८५॥

सामान्यके कथनसे विशेषका ग्रहण कहते हैं कि, जहां पात्र शब्द कहा गया हो वहां मिट्टीका पात्र ग्रहण करे । उत्पल शब्दसे नीलोत्पल ले, जहांपर शकृत्रस (मलकारस) हो वहांपर गोबरका रस और जहांपर चन्दन लिखा है वहांपर लालचन्दन[2] ग्रहण करे । सर्षप शब्दसे सफेद सरसों, लवण शब्दसे सेंधानोन और केवल मूत्र शब्दसे गोमूत्र ग्रहण करे । दूध और घी लिखा हो तो वहांपर गायका दूध और गायकाही घी ग्रहण करे । चौपाये पशुओंमें मादा और पक्षीजातिमें नरको ग्रहण करे । जंगली पशुओंमें मध्यम उमरवालेको ग्रहण करे और व्यवहार न करने योग्य चर्म रोम व नखादि द्रव्यको छोडकर हड्डी सहित मांसके टुंकडे २ करले । घृत और तेलके पाकके सम्बन्धमें विधिपूर्वक छागका मांस ग्रहण करना

---

१ एतद्धेतुगर्भं विशेषणम् । असन्धिस्तु छान्दसः । अथवा न वीर्यम् अवीर्यम् अल्पार्थे नञ्, तेनाल्पशुक्रम् । अतएव काशीराजाभिप्रायेण नपुंसकस्य विधिना सूचितमेव शरीरारम्भकत्वादल्पवीर्यत्वं वर्यिमस्त्येव इत्यर्थः । अतः स्रावशोणितायाश्छाग्यास्त्वनुपयोगित्वम् । अर्थादस्रावशोणिताया ग्राह्या इत्यर्थः ॥ स्त्री प्रकृत्या वन्ध्या छाग्या अस्रावशोणितात्वमस्त्येव तस्माद्वन्ध्या छाग्यपि योग्या इति नपुंसकभावादनुशासनात् ॥

१ परन्तु चूर्ण लेह आसव और स्नेह बनाना हो तो इसके स्थानमें श्वेत चन्दन ग्रहण करना चाहिये । काढे और लेपके विधानमें लालचन्दनको ग्रहण करे यथाः–

"चूर्णलेहासवस्नेहाः साध्या धवलचन्दनैः ।
कषायलेपयोः प्रायो युज्यतेरक्तचन्दनम् ॥" (भावप्रकाशे)

हो तो नर व मादा जाति तो छोडकर बलवान्, मध्यम उमरवाले, वीर्यवान् और श्रेष्ठ शरीरवाले क्लीव (नपुंसक-खस्सी) का ग्रहण करे। वृद्ध, कम उमरका, वीर्यहीन या रक्तस्रावका या जिसमें किसी प्रकारका दोष हो उसको ग्रहण न करना चाहिये ॥ ८०–८९ ॥

काशीराजमतेनैव छागमेव नपुंसकम् ।
अभावादप्रतिज्ञाद्वा वृद्धवैद्योपदेशतः ॥
वन्ध्या छागी विपक्तव्या न तु शास्त्रमतं चरेत्८६॥

काशिराजका मत है कि, नपुंसक छागही ग्रहण करना चाहिये। नपुंसक छाग न हो अथवा प्रतीक्षा (विलम्ब) करनेका समय न हो तो वृद्ध वैद्यके उपदेशके अनुसार वांझ छागीकोही पाकके कार्यमें ले आवे परन्तु आयुर्वेद शास्त्र इससे सम्मत नहीं है, न होतेमें ही ऐसा करना चाहिये ॥ ८६ ॥

शृगालबर्हिणोः पाके पुमांसं तत्र दापयेत् ।
मयूरी जम्बुकी छागी वीर्यहीना स्वभावतः ॥ ८७ ॥

शृगाल और मोरके मांससे पाकमें तो नरजातिकाही मांस ग्रहण

---

१ अभावादिति नपुंसकस्य अलाभात् । अथवा नपुंसकस्य वीर्याभावात् वीर्यमस्ति न वेति काकदन्तवत् । अप्रतिज्ञाद्वा–शास्त्रमिति शासनम् आज्ञा, काशीराजमतेनैवेत्यादिरूपेण ॥ केचित्तु कृत्रिमनपुंसकमपि ददति । तदसत्तत्तु प्रकृतिश्च पुरुषएव। ननु वन्ध्याया नपुसंकस्य च छागस्य अपत्यजनकत्वं नास्ति, तत्कथमपत्यकामिनः प्रवर्त्तन्ते छागलादिघृतादिषु कदाचित् क्रिया सिद्धेरभावः स्यादतश्चिन्त्यम् ॥

काशीराजका ऊपर कहा हुआ मत केवल अभावके पक्षमेंही है। कोई २ कृत्रिम नपुंसकके द्वारा घृततैलादिका पाक बनाया करते हैं, परन्तु वह युक्तिसिद्ध नहीं है। वह प्रकृतिसे पुरुषजातीय है ॥ जब वन्ध्या छागी और नपुंसक पुत्रजनक नहीं हैं तो फिर क्यों पुत्रार्थी छागल घृतादिकोंमें प्रवृत्त होते हैं इस कारण यह विचारणीय है।

करना चाहिये । क्योंकि, मोरनी, शृगाली और भेड ये स्वभावसेही वीर्यहीन होती हैं ॥ ८७ ॥

स्त्रीणां मूत्रं गवां तीक्ष्णं न तु पुंसां विधीयते ।
पित्तात्मिकाः स्त्रियो यस्मात्सौम्यास्तु पुरुषा मताः ।
क्षीरमूत्रपुरीषाणि जीर्णाहारे तु संहरेत् ॥ ८८ ॥

गायका गोमूत्र ग्रहण करना चाहिये । परन्तु अनथनी गायका मूत्र ग्रहण करना ठीक नहीं । बैलका मूत्र ग्रहण न करे. क्योंकि, स्त्रीजातिका मूत्र आग्नेयत्वके हेतु करके तीक्ष्ण और नरजातिका मूत्र सोमगुणयुक्त होता है । दूध, मूत्र और पुरीष (मल) आहार पचनेके अन्तमें ग्रहण करे ॥ ८८ ॥

विनाकहे द्रव्योंका ग्रहण ।

कालेऽनुक्ते प्रभातं स्यादङ्गेऽनुक्ते जटा भवेत् ॥ ८९ ॥
भागेऽनुक्ते तु साम्यं स्यात्पात्रेऽनुक्ते तु मृन्मयम् ।
द्रवेऽनुक्ते जलं विद्यात्सर्वत्रैष विनिश्चयः ॥ ९० ॥

काल न कहा हो तो प्रातःकाल, औषधिका अंग न कहा हो तो मूल, भाग न कहा हो तो समभाग, पात्र न कहा हो तो मिट्टीका बना हुआ पात्र और द्रवद्रव्य न बतलाया हो तो सब जगह जलका ग्रहण करना चाहिये ॥ ८९ ॥ ९० ॥

द्रव्योंके प्रतिनिधि ।

मधु यत्र न विद्येत तत्र जीर्णो गुडो मतः ।
पुरातनगुडाभावे रौद्रे यामचतुष्टयम् ॥ ९१ ॥

संशुष्य नूतनं ग्राह्यं पुरातनगुडैर्विना ।
क्षीराभावे भवेन्मौद्गो रसो मासूर एव वा ॥ ९२ ॥

मधुके अभावमें पुराना गुड ग्रहण करे, पुराना गुड न हो तो नये गुडका चार प्रहर तक तीव्र धूपमें सुखाकर प्रयोग करे। दूध न हो तो मूंग अथवा मसूरके रस (यूष)को ग्रहण करे ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

सिताभावे च खण्डः स्याच्छाल्यभावे च षष्टिकः ।
असम्भवे च द्राक्षाया गम्भारीफलमिष्यते ॥ ९३ ॥
न भवेद्दाडिमो यत्र वृक्षाम्लं तत्र दापयेत् ।
सौराष्ट्रीमृदभावे च ग्राह्या पङ्कस्य पर्प्पटी ॥ ९४ ॥
नतं तगरमूलं स्यादभावे शीहलीजटा ।
प्रयोगे यत्र लौहः स्यादभावे तन्मलं विदुः ॥ ९५ ॥
सर्षपः शुक्लवर्णो यः स हि सिद्धार्थ उच्यते ।
तत्र सिद्धार्थकाभावे सामान्यः सर्षपो मतः ॥ ९६ ॥

मिश्रीके अभावसे खांड, शालि धान्य न हो तो साठी धान्य, दाखके अभावमें खम्भारीका फल, दाडिमके अभावमें वृक्षाम्ल, सौराष्ट्रकी मिट्टीके अभावमें पंकपपडी (फिटकिरी) ग्रहण करे; तगरकी जडके अभावमें शीहली जटा और लोहके अभावमें लौहमल ग्रहण करे। श्वेत सरसोंको सिद्धार्थ करते हैं, इनके आभावमें साधारण सरसों ग्रहण करे ॥९३-९६

चविकागजपिप्पल्योः पिप्पलीमूलमेव च ।
अभावे पिप्पलीमूलं हस्तिपिप्पलिचव्ययोः ॥९७॥

---

१ पाठान्तरमेतत् न पुनरुक्तदोषः ।

अभावे सोमराज्यास्तु प्रपुन्नाटफलं स्मृतम् ।
अभावे पृश्निपर्ण्याश्च सिंहपुच्छी[1] विधीयते ।
नित्यं मुञ्जतिका[2]भावे तालमस्तक[3]मिष्यते ॥ ९८ ॥

चव्य और गजपीपलके अभावमें पीपलामूल ग्रहण करे एवं पीपलामूलके भी अभावमें गजपीपल ग्रहण करे, वाकुचीके अभावमें पवार ग्रहण करे, पिठवनके अभावमें शालपर्णी (सरिवन) और मुंजतिका (मूंज) के अभावमें तालमस्तक ग्रहग करे ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

कुङ्कुमस्याप्यभावेऽपि निशा ग्राह्या भिषग्वरैः ।
मुक्ताभावे शङ्खचूर्णं वज्राभावे वराटिका ॥ ९९ ॥
कर्कटशृङ्गिकाभावे मायाम्बु चेष्यते बुधैः[4] ।
धान्यकाभावतो दद्याच्छतपुष्पां भिषग्वरः ॥१००॥
वाराहीकन्दकाभावे चर्म्मकारालुको मतः ।
मूर्वाभावे त्वचो ग्राह्या जिङ्गिन्या ब्रुवते सदा १०१

कुंकुमके अभावमें कच्ची हलदी, मुक्ताके अभावमें शंखचूर्ण, हीरेके अभावमें वराटिका (चुंबक), काकडाशृंगीके अभावमें मायाम्बुवीज (माजूफलके वीज), धनियेके अभावमें सौंफ, वाराहीकन्दके अभावमें चमारआलु और मुरहरी (मुहार) के अभावमें मजीठ वृक्षकी वक्कल ग्रहण करे ॥ ९९–१०१ ॥

अभावात्पौष्करे मूले कुष्ठं सर्वत्र गृह्यते ।
सामुद्रसैन्धवाभावे विडम्बा गृह्यते बुधैः ॥१०२ ॥

---

१ सिंहपुच्छी—शालपर्णी । २ मञ्जुफलमिति केचित् । ३ तालसदृशवृक्षः स्यात् स च देशान्तरे ख्यातः ॥ ४ कर्कटश्रृङ्गिकाभावे मायम्बुवीजमिष्यते इतिपाठान्तरम् ।

कुस्तुम्बुरुर्न विद्येत यत्र तत्र च धान्यकम्।
पुष्पाभावे फलं चामं विड्भेदे बिल्वतः फलम्१०३
यष्ट्याह्वाभावतो विद्याच्चव्यं तस्याप्यभावतः।
मूलं मौषलिकं देयमभावे कुटजस्य च॥ १०४॥
रास्नाभावे च वन्दाकं जीराभावे च धान्यकम्।
तुम्बुरूणामभावेऽपि शालिधान्यं प्रकीर्तितम् १०५

पुष्करमूलके अभावमें सब जगह कूट ग्रहण करे, सेंधानोनके अभावमें समन्दरनोन, कुस्तुम्बरु (गीले या कच्चे धनिये) के अभावमें धनियां, पुष्पके अभावमें कच्चा फल और विड भेदमें विल्वफल ग्रहण करे। मूलहठीके अभावमें चव्य, कुडाके अभावमें मुसलीकी जड, रास्नाके अभावमें वन्दा (वृक्षके ऊपर वृक्ष) जीराके अभावमें धनियाँ और तुम्बुरुके अभावमें शालिधान्य ग्रहण करे॥ १०२–१०५॥

भल्लातकासहत्वे तु रक्तचन्दनमिष्यते।
भल्लाताभावतश्चित्रं नलश्चेक्षोरभावतः।
मद्याभावे च शिण्डाकी शुक्त्यभावे च काञ्जिकम्१०६

भिलावा सहन न हो तो रक्तचन्दन ले, भिलावेके अभावमें चित्रक, गन्नेके अभावमें नल, मद्यके अभावमें शिण्डाकी (सन्धान–भेद) और शुक्तिके अभावमें कांजी ग्रहण करे॥ १०६॥

चित्रकाभावतो दन्ती क्षारः शिखरिजोऽथवा।
अभावे धन्वयासस्य प्रक्षेप्या तु दुरालभा॥१०७॥
अहिंस्राया अभावे तु मानकन्दः प्रकीर्त्तितः।
लक्ष्मणाया अभावे तु नीलकण्ठशिखा मता॥१०८॥

चीताके अभावमें दन्तीमूल अथवा चिरचिटेका क्षार, धमासेके अभावमें दुरालभा (जवासा) अहिंस्रा (कण्टकपाली) के अभावमें मानकन्द (मालकन्द) और लक्ष्मणाके अभावमें मोरशिखा लेनी चाहिये ॥ १०७॥१०८ ॥

बकुलाभावतो देयं कह्लारोत्पलपङ्कजम् ।
नीलोत्पलस्याभावे तु कुमुदं देयमिष्यते ॥ १०९ ॥
जातीपुष्पं न यत्रास्ति लवङ्गं तत्र दीयते ।
अर्कपर्णादिपयसो ह्यभावे तद्रसो मतः ॥ ११० ॥
पौष्कराभावतः कुष्ठं तथा लाङ्गल्यभावतः ।
स्थौणेयकस्याभावे तु भिषग्भिर्दीयते गदः ॥१११॥

बकुल, (मोलसरी) न मिले तो लाल कमल या चंद्रमाकी चांदनीमें खिलनेवाला कमल लेले । नीला कमल न मिले तो उसके स्थानमें श्वेत कमल वरत ले ॥ चमेलीका फूल न मिले तो लोंगही वरत ले, आकके पत्ते आदिके दूधके अभावमें तो उसके पत्तोंका रसही लेले ॥ पोहकर मूल और कलिहारीके अभावमें कूटही वरतले एवम् थुनेरके अभावमें भी वैद्यवर कूटका व्यवहार करते हैं ॥ १०९–१११ ॥

कुङ्कुमाभावतो दद्यात्कुसुम्भकुसुमं नवम् । (द्विपाठः)
श्रीखण्डचन्दनाभावे कर्पूरं देयमिष्यते ॥ ११२ ॥
अभावे त्वेतयोर्वैद्यः प्रक्षिपेद्रक्तचन्दनम् ।
रक्तचन्दनकाभावे नवोशीरं विदुर्बुधाः ॥ ११३ ॥
मुस्ता चातिविषाभावे शिवाभावे शिवा मता ।
अभावे नागपुष्पस्य पद्मकेशरमिष्यते ॥ ११४ ॥

मेदाजीवककाकोलीऋद्धिद्वन्द्वेऽपि वासति।
क्षीरविदार्य्यश्वगन्धा वाराही च क्रमात् क्षिपेत्॥११५॥

केशरके अभावमें कुसूमके नये फूल, सफेद चन्दनके अभावमें कपूरके देनेका विधान है। ये दोनों न हो तो लाल चन्दनका प्रयोग करे। लालचन्दन न हो तो वैद्योंको चाहिये कि, खसको लेले॥ अतीसके अभावमें नागरमोथा, हर्रके अभावमें आमला और नागकेशरके अभावमें कमल केशरका व्यवहार करना चाहिये॥ मेदा और महामेदाके अभावमें शतावरी, जीवक(ऋषभ) के अभावमें, विदारीकंद, काकोली और क्षीरकाकोलीके अभावमें असगन्ध और ऋद्धि वृद्धिके अभावमें वाराहीकन्द(चमारआलु)ग्रहण करना चाहिये।११२-११५॥

सुवर्णाभावतः स्वर्णमाक्षिकं प्रक्षिपेद् बुधः।
श्वेतं तु माक्षिकं ज्ञेयं बुधै रजतवद्ध्रुवम् ॥ ११६ ॥
माक्षिकस्याप्यभावे तु प्रदद्यात्स्वर्णगैरिकम्।
सुवर्णमथवा रौप्यं मृतं यत्र न लभ्यते ॥ ११७ ॥
तत्र कान्तेन कर्म्माणि भिषक्कुर्याद्विचक्षणः।
कान्ताभावे तीक्ष्णलौहं योजयेद्वैद्यसत्तमः ॥ ११८ ॥

---

१ वाराहीकन्दसंज्ञस्तु पश्चिमे गृष्टिसंज्ञकः।
वाराहीकन्द एवान्यैश्चर्म्मकारालुको मतः॥
अनूपसम्भवे देशे वराह इव लोमवान्॥ (भावप्रकाशे)

पश्चिमदेशमें वाराहीकन्दको गेंठी कहते हैं, पूर्वकी ओर चमारआलूके नामसे प्रसिद्ध है। यह आनूप (जलीय) देशमें जन्मता है। शूकरकेसे रोम इसपर होते हैं इस कारण इसका नाम वाराहीकन्द है।

मत्स्यण्डचभावतो दद्युर्भिषजः सितशर्कराम् ।
असम्भवे सितायास्तु बुधैः खण्डं प्रयुज्यते ॥११९॥

सुवर्णके अभावमें सोनामख्खी, चांदीके अभावमें रूपामख्खी, स्वर्णमख्खीके अभावमें पीले गेरूका प्रयोग करे। सोने और चांदीका भस्म न मिले तो चतुर वैद्यको चाहिये कि, कान्तिसार लोहेकी भस्मसे कार्य पूरा करे। कान्त लौह न मिलै तो इस्पातकी भस्मका प्रयोग करे। मिट्टीके अभावमें श्वेत शर्करा और चीनीके अभावमें खांडका प्रयोग करना ठीक है॥ ११६–११९॥

सुवर्णमथवा रौप्यं योगे यत्र न लभ्यते ।
तत्र लौहेन कर्म्माणि भिषक्कुर्याद्विचक्षणः ॥ १२० ॥

भस्म किये हुए सुवर्ण या भस्म की हुई चांदीका अभाव हो तो, चतुर वैद्यको चाहिये कि, वहांपर जारित लौहका प्रयोग करे॥१२०॥

रसाञ्जनस्याभावे तु सम्यग्दार्वी प्रयुज्यते ।
सौराष्ट्र्यभावतो देया स्फाटिका तद्गुणा जनैः॥१२१॥
तालीशपत्रकाभावे स्वर्णताली प्रशस्यते ।
भार्ङ्ग्यभावे तु तालीशं कण्टकारीजटाथवा ॥ १२२ ॥
रुचकाभावतो दद्याल्लवणं पांशुपूर्वकम् ।
अभावे मधुयष्ट्यास्तु धातकीञ्च प्रयोजयेत् ॥ १२३ ॥

रसौत न मिले तो दार्वी (दारुहलदी) का प्रयोग करे। सोरटी माठी न मिले तो उसके गुणोंवाली फट्किरी ग्रहण करे । तालीशपत्रके अभावमें स्वर्णताली श्रेष्ठ है, भारंगीके अभावमें तालीशपत्र अथवा कटेरीकी जड ग्रहण करे, काले नमकके अभावमें पांगानोन

और मुलहठीके अभावमें धातकीपुष्प (धायके फूल) का प्रयोग करना चाहिये ॥ १२१–१२३ ॥

अम्लवेतसकाभावे चुक्रं दातव्यमिष्यते ।
द्राक्षा यदि न लभ्येत प्रदेयं काश्मरीफलम् ॥ १२४ ॥
तयोरभावे कुसुमं बन्धूकस्य मतं बुधैः ।
लवङ्गकुसुमं देयं नखस्याभावतः पुनः ॥ १२५ ॥
कस्तूर्य्यभावे कक्कोलं क्षेपणीयं विदुर्बुधाः ।
कक्कोलस्याप्यभावे तु जातीपुष्पं प्रदीयते ॥ १२६ ॥
सुगन्धि मुस्तकं देयं कर्पूराभावतो बुधैः ।
कर्पूराभावतो देयं ग्रन्थिपर्णं विशेषतः ॥ १२७ ॥

अमलवेतके अभावमें चूका, दाखके अभावमें गाम्भारीफल, खम्भारीफलके अभावमें दुपहरियाके फूलका पंडितलोग व्यवहार करते हैं। नखीके अभावमें लोंगके फूल, कस्तूरीके अभावमें काकोली और काकोलीके अभावमें चमेलीके फूल दिये जाते हैं। कपूरके अभावमें गठिवन अच्छा है पर कभी २ पंडितलोग सुगन्धित नागरमोथेका भी व्यवहार करते हैं ॥ १३४-१२७ ॥

यदि न स्याद्दारुनिशा तदा देया निशा बुधैः ।
अभावे कोकिलाक्षस्य गोक्षुरं बीजमिष्यते ॥ १२८ ॥
अन्तःसंमार्ज्जने ज्ञेया ह्यजमोदा यमानिका ।
बहिः संमार्जने सैव विज्ञातव्याजमोदिका ॥ १२९ ॥

---

१ कस्तूरीणामभावे तु ग्राह्या गन्धशटी बुधैः । इति पाठान्तरम् ।
कस्तूरीके अभावमें आँबिया हलदी ले ॥

दारुहलदीके अभावमें पंडितलोग हलदीका व्यवहार करते हैं। तालमखानेके अभावमें गोखरूके बीजोंको ग्रहण करते हैं। शरीरकी भीतरकी शुद्धि करनेमें अजमोदके स्थलमें यवानी (अजवायन) और बाहरकी शुद्धिमें अजमोदकी जगह अजमोदिका (अजमोद)को ही ग्रहण करे ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

यत्र यद्द्रव्यमप्राप्तं भेषजे परपूर्वतः ।
ग्राह्यं तद्गुणसाम्यात्तु न तत्र क्वापि दूषणम् ॥१३०

किसी औषधिमें तेल या घृतादिमें यदि किसी द्रव्यका अभाव हो तो उसके बदलेमें उस जैसे ही गुणोंवाली दूसरी औषधि लेले इसमें कोई दोष नहीं है॥ १३० ॥

अन्यानि यानीह रसायनादौ योगे च वस्तूनि च कीर्तितानि । तेषामलाभे न च वृद्धवैद्य-प्रसिद्धितस्तानि हरान्ति वैद्याः ॥ १३१ ॥

परन्तु रसायनादिमें जिन औषधियोंका वर्णन है, उन औषधियोंके अभावमें वृद्ध वैद्योंके उपदेशानुसार जैसा प्रचलित है वैसा ग्रहण करे ॥ १३१ ॥

अत्र प्रोक्तानि वस्तूनि यानि तेषु च तेषु च ।
योज्यमेकतराभावेऽपरं वैद्येन जानता ॥ १३२ ॥
रसवीर्यविपाकाद्यैः समं द्रव्यं विचिन्त्य च ।
युञ्ज्यात्तद्विधमन्यच्च द्रव्याणां तु रसादिवित् १३३
योगे यदप्रधानं स्यात्तस्य प्रातिनिधिर्मतः ।
यत्तु प्रधानं तस्यापि सदृशं नैव गृह्यते ॥ १३४ ॥

व्याधेरयुक्तं यद्द्रव्यं गणोक्तमपि तत्त्यजेत्।
अनुक्तमपि युक्तं यद्योजयेत्तद्रसादिवित्॥ १३५॥

यहां पर जिस २ वस्तुके बदले जिस २ वस्तुका प्रतिनिधिके रूपमें प्रयोग करनेका वर्णन हुआ है यदि उन वस्तुओंका अभाव हो तो उनकी जगह उन वस्तुओंकाभी व्यवहार होसकता है जिसके कि, प्रतिनिधि कहे गये हैं। रसवीर्य विपाकादिसे ज्ञानी वैद्य विचारके साथ द्रव्यका रस, वीर्य विपाकादिमें समान देखकर और भी तुल्यरसादि गुण युक्त द्रव्योंका एक दूसरेके बदलेमें प्रयोग करे। जो औषधि प्रधान हो उसका प्रतिनिधि नहीं हो सकता, उसके बदलेमें बराबर गुणवाली औषधि न ग्रहण करके, जो द्रव्य प्रधान नहीं है उसके समान गुणवाला द्रव्य ग्रहण करे। रस वीर्यादिके जाननेवाले चिकित्सकको चाहिये कि, रोगके अयोग्य औषधि यदि गणमें कहीं हुई भी हो तोभी उसका त्याग कर दे एवं रोगके योग्य औषधि गणमें न कही हो तोभी विचार करके उसका प्रयोग करे॥ १३२-१३५॥

इति वैद्यकपरिभाषाप्रदीपका प्रथमखण्ड समाप्त।

अथ द्वितीयखण्डः।

अथातः स्वरसः कल्कः क्वाथश्च शीतफाण्टकौ॥

पांचतरहके कषाय।

पत्तोंका रस निकालना

स्वो रसः स्वरसः प्रोक्तः कल्को दृषदि पेषितः।

पकाना रातभर पानीमें

क्वथितस्तु शृतः शीतः शर्वरीमुषितो मतः॥ १॥

वस्तुके रसको स्वरस तथा पत्थरपर पीस लेनेसे कल्क बनता है, काढा करनेपर क्वाथ एवम् रातभर रखनेसे शीत होता है॥ १॥

क्षिप्तोष्णतोये मृदितः फाण्ट इत्यभिधीयते ।
पञ्चैताश्च समुद्दिष्टाः कषायाणां प्रकल्पनाः ।
गुरवः स्युर्यथापूर्वं लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ २ ॥

गरम पानीमें डालकर मथ लेनेसे फाण्ट कहा जाता है । ये पांच प्रकारके कषाय होते हैं । स्वरससे कल्क, कल्कसे क्वाथ, क्वाथसे शीत तथा शीतसे फांट हलका है एवम् फांटसे शीत, शीतसे क्वाथ, क्वाथसे कल्क और कल्कसे स्वरस भारी होता है ॥ २ ॥

स्वरसकी विधि ।

✓

सद्यःक्षुण्णार्द्रद्रव्यस्य वस्त्रयन्त्रादिपीडनात् ।
यो रसस्त्वभिनिर्याति स्वरसः संप्रकीर्तितः ॥ ३ ॥

तत्काल उखाड़ी हुई गीली औषधिको (कूट) वस्त्र अथवा यन्त्र आदिसे निचोड़नेपर जो रस निकलता है उसे स्वरस कहते हैं ॥ ३ ॥

अहतात् तत्क्षणाकृष्टात् क्षुण्णाद् द्रव्यात्समुद्धरेत् ।
वस्त्रनिष्पीडितो यस्तु रसः स्वरस उच्यते ॥ ४ ॥

इसी स्वरसके विषयमें शार्ङ्गधरमें कहा है कि, विना बिगड़ी हुई वनस्पतिको लाकर उसी समय कूट कपड़ेमें डालकर निचोड ले, इस निचोड़े हुए रसको स्वरस कहते हैं । यह गीली वस्तुके स्वरस लेनेकी विधि है ॥ ४ ॥

कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तं चेद्द्विगुणे जले ।
अहोरात्रं स्थितं तस्माद् भवेद्वा रस उत्तमः ॥ ५ ॥

एक कुडव(१६ तोले)सूखी औषधिका चूर्ण करके उससे दूने पानीमें उसे डालकर रातभर रखा, रहने दे, दूसरेदिन औषधियोंको मसलकर उसके पानीको कपड़ेसे छान ले यह दूसरी तरहका स्वरस हुआ ॥५ ॥

शुष्कद्रव्यमुपादाय स्वरसानामसंभवे।
वारिण्यष्टगुणे साध्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥६॥

यदि हरी औषधि न मिले तो सूखी औषधिको लेकर उसमें आठ गुना पानी डाल आगपर चढा दे, चौथाई पानी बाकी रहजानेपर उतारकर छान ले। यह सूखी दवासे स्वरस लेनेकी विधि है यह तीसरी तरहका स्वरस हुआ॥ ६॥

आदाय शुष्कं द्रव्यं वा स्वरसानामसंभवे।
जलेऽष्टगुणिते साध्यं पादशेषं च गृह्यते ॥ ७॥

शार्ङ्गधर संहितामें लिखा है कि, यदि सरस गीली औषधि न मिले तो सूखी औषधि लाकर उसमें आठ गुना पानी डाल दे फिर काढा करे, चौथाई जल रहजाने पर उतार कर छान ले। यह भी तीसरे स्वरसको बताया है, दोनोंका एकही तात्पर्य्य है॥ ७॥

स्वरसकी मात्रा।

स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्द्धं प्रयोजयेत्।
निःशेषितश्चापि सिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत्॥ ८॥

पहिला स्वरस पाकमें भारी है, इस कारण इसकी मात्रा अर्द्धपल (२ तोले) की करके पान करे। पर दूसरे प्रकार और तीसरे प्रकारके स्वरसकी मात्रा १ पल (४ तोले) की होनी चाहिये। रोगी इसी विधिसे पीये॥ ८॥

पुटपाकविधि।

पुटे पक्वस्य द्रव्यस्य स्वरसो गृह्यते यतः।
अतोऽयं पुटपाकः स्याद्विधानं तस्य कथ्यते॥ ९॥

द्रव्यमापोत्थितं जम्बुवटपत्रादिसम्पुटे ।
वेष्टयित्वा ततो बद्ध्वा दृढं रज्ज्वादिना तथा ॥ १० ॥
मृल्लेपं द्व्यङ्गुलं कुर्यादथवाङ्गुलिमात्रकम् ।
दहेत्पुटान्तरादग्नौ यावल्लेपस्य रक्तता ॥ ११ ॥

किसी २ द्रव्यका कल्क बना उसे पुटमें पकाकर उसका स्वरस ग्रहण किया जाता है, इस कारण पुटपाकका विधान कहते हैं । घडियामें कूटा हुआ द्रव्य रखकर उस घडियेको जामनके और बडके पत्ते आदिसे लपेट रस्सीसे भली भांति बांध दे फिर उसपर सर्वत्र मिट्टीका दो अंगुल या एक अंगुलका मोटा लेप देकर विधिपूर्वक नीचे ऊपर आरने रखकर आग देदे । लेपका लाल रंग होजानेपर पाकको सिद्ध हुआ जानकर उतार ले ॥ ९–११ ॥

पुटपक्वस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यते यतः ।
अतस्तु पुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते मया ॥ १२ ॥
पुटपाकस्य मात्रेयं लेपस्यारुणवर्णता ।
लेपश्च द्व्यंगुलं स्थूलं कुर्याद्वाङ्गुलिमात्रकम् ॥ १३ ॥

शार्ङ्ग० संहिताकी कही हुई विधि कहते हैं कि, पुटमें पके हुए कल्कका स्वरस ग्रहण करना आवश्यक होता है इस कारण पुटपाककी विधि कहते हैं कि पुटपाककी यही पहिचान है कि, लेपका रंग लाल होजाय।वैसेही पुटपाकको सिद्ध हुआ जानकर तत्काल अग्निमेंसे निकालले।इसका मट्टीका लेप दो अंगुल या एक अंगुल मोटा हो॥ १२।१३

✓ कल्ककी विधि ।

द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा जलमिश्रितम् ।

तदेव सूरिभिः पूर्वैः कल्क इत्यभिधीयते।
आवापस्त्वथ प्रक्षेपस्तस्य पर्याय उच्यते॥ १४॥

गीली औषधिको शिलापर चटनीके समान बारीक पीसकर या सूखीमें पानी डाल इसी तरह पीसकर लुगदी बना ले तो उसे कल्क कहते है। ऐसे आयुर्वेदाचार्य मुनियोंने कहा है। कल्कके एक पर्यायक आवाप और प्रक्षेप शब्द हैं॥ १४॥

चूर्ण।

अत्यन्तशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम्।
चूर्णं तच्च रजःक्षोदस्तस्य पर्याय उच्यते॥ १५॥

सूखा हुआ द्रव्य, भली भांतिसे शिलापर पीसकर कपडछान किया जाय तो उसे चूर्ण कहते हैं। इसके रज और क्षोद पर्याय वाचक शब्द हैं। कल्ककी तरह यह भी पीसा जाता है पर इसमें पानी नहीं होता। यही इसका और कल्कका भेद है॥ १५॥

कल्क एवं उसकी मात्रा।

द्रव्यमात्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत।
प्रक्षेपावापकल्कास्ते तन्मानं कर्षसम्मितम्॥१६॥
कल्के मधुघृतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया।
सितां गुडं समं दद्याद् द्रवा देयाश्चतुर्गुणाः॥१७॥

शा. सं. में कहा है कि, गीला द्रव्य शिलापर पीस लेनेसे अथवा सूखा द्रव्य पानी डालकर पीसनेसे जो वस्तु तैयार होती है उसे प्रक्षेप, आवाप और कल्क कहते हैं। इसकी मात्राका परिमाण एक कर्ष (१ तोला) होता है। यदि कल्कमें, शहत, घी और तेल डालना हो तो कल्कसे दूने डाले एवं चीनी और गुड डालने होतो कल्ककी

बराबरही ले और द्रव (तरलद्रव्य दूध जलादि) डालने हो तो कल्कसे चौगुने ले ॥ १७ ॥

क्वाथ, काढा. तथा सेवन विधि।

पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णद्रव्यपले क्षिपेत्।
मृत्पात्रे क्वाथयेद् ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम् ॥१८॥
तज्जलं पाययेद्धीमान्कोष्णं मृद्वग्निसाधितम्।
शृतः क्वाथः कषायश्च निर्य्यूहः स निगद्यते ॥१९॥
आहाररसपाके च सञ्जाते द्विपलोन्मितम्।
वृद्धवैद्योपदेशेन पिबेत्क्वाथं सुपाचितम् ॥२०॥
क्वाथे क्षिपेत्सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः।
वातपित्तकफातङ्के विपरीतं मधु स्मृतम् ॥२१॥

शा. सहितामें कहा है कि, एक पल (४ तोला) द्रव्यको कूटकर १६ गुने जलमें मिट्टीके पात्रमें चढा मन्द २ आगसे औटावे औषधिसे दूना पानी बाकी रह जानेपर उतारकर छानले। इसको क्वाथ कहते हैं इस क्वाथको थोडासा गरम रहतेही पीजाये। इसके पर्याय वाचक शब्द क्वाथ कषाय और निर्यूह। खाये हुए अन्नके पच जानेपर दो पल (८ तोले) इस क्वाथको वृद्ध वैद्योंके कथनके अनुसार पान करे। यदि काढेमें खांड डालनेका विधान मिले तो वातके रोगोंमें

---

१ श्रीमान् वैद्यरत्न पं. राम प्रसादजी राजवैद्य पटियालाने शार्ङ्गधरमें इसी श्लोकके अर्थमें इस "विपरीतं मधु स्मृतम्" का अर्थ "तथा शहद पित्त रोगमें हो तो काढेका सोलहवां हिस्सा, वात रोग हो तो आठवाँ हिस्सा तथा कफरोग हो तो चतुर्थांश शहद डाले" यह किया है। एवम् गोलोकवासी श्रीशालिग्रामजीने वही अर्थ किया है जो टीकामें है। पाठक इस पर विचार करके प्रयोगमें लायें।

क्वाथसे चौथाई चीनी मिलाकर पान करे, पित्तसे उत्पन्नहुए रोगोंमें आठवें अंशकी खांड मिलाये। कफसे उत्पन्न हुये रोगोंमें १६ वे अंशकी चीनी मिलाकर इसका सेवन करे; पर क्वाथमें मधु डालनेका विधान हो तो इसके विपरीत डाले यानी वायुके कोपमें क्वाथका सोलहवां हिस्सा, पित्तके कोपमें आठवां अंश एवं कफके कोपमें क्वाथकी चौथाई शहद डालकर पान करे ॥ १८–२१ ॥

द्रव्यादापोत्थितात्तोये वह्निना परिपाचितात्।
निःसृतो यो रसः पूतः स शृतस्समुदाहृतः।
क्वाथः कषायो निर्यूहः पर्यायस्तस्य कीर्तितः ॥२२

दूसरे ग्रन्थोंमें क्वाथकी यह भी विधि लिखी है कि, कूटे हुए द्रव्यको जल मिला अग्निमें विधिपूर्वक पका फिर कपडेमें मसलकर छानले, इससे जो रस निकलता है उसे शृत कहते है। इसके क्वाथ, कषाय और निर्यूह पर्याय शब्द हैं ॥ २२ ॥

शीत कषाय।

क्षुण्णद्रव्यपलं सम्यक्षड्भिर्ज्जलपलैः प्लुतम्।
शर्वरीमुषितं सम्यग्ज्ञेयः शीतकषायकः ॥ २३ ॥

एक पल (४ तोले) औषधि कूटकर छः पल (२४ तोले) जलमें एक राततक भिगो रक्खे, प्रातः छान ले इसे शीत कहते हैं ॥ २३॥

तण्डुलोदक।

तण्डुलान् कणशः कृत्वा पलं ग्राह्यं हि तण्डुलात्।
चतुर्गुणं जलं देयं तण्डुलोदककर्म्मणि ॥ २४ ॥

एक पल (४तोले) सूखेहुए चावल भलीभांति कूटकर चौगुने जलमें एक दिन या एक राततक भिजो रक्खै फिर छानले इसको 'तण्डुलोदक' कहते हैं। इसीका अवान्तर भेद है इस लिये यहां कहा है ॥ २४ ॥

अन्येऽप्याहुः—

शीतकषायमानेन तण्डुलोदककल्पना ॥ २५ ॥

कोई २ कहते हैं कि, जिस परिमाणसे शीतकषाय प्रयोग किया जाता है, तण्डुलोदकका प्रयोग भी उसी परिमाणसे करना चाहिये २५

फाण्टकी विधि ।

क्षुण्णद्रव्यपले सम्यग्जलमुष्णं विनिक्षिपेत् ।
पात्रे चतुष्पलमितं ततस्तु स्रावयेज्जलम् ।
सोऽयं पूतो द्रवः फाण्टो भिषग्भिरभिधीयते ॥२६॥

एक पल (४ तोले) द्रव्य कूट उसे मिट्टीके पात्रमें चौगुने गरम जलमें डाल दे, फिर विधिके साथ कपडेमें छान ले इसे फाण्ट कहते हैं २६

दोनों कषायोंका विश्वामित्रका लक्षण ।

विश्वामित्रेण शीतफाण्टयोर्लक्षणमुक्तं, तद्यथा—
षड्भिः पलैश्चतुर्भिर्वा सलिलात् शीतफाण्टयोः ।
आप्लुतं भेषजपलं रसाख्यायां पलद्वयम् ॥ २७ ॥

विश्वामित्रजीने शीत और फाण्ट दोनोंका एक श्लोकमें लक्षण कहा है कि, छः पल पानीमें एक पल दवाका शीत विधिपूर्वक बनाया जाता है तथा एक पल औषधिका चार पल पानीमें विधिपूर्वक फाण्ट तैयार होता है । यदि स्वरसके बदले इसका व्यवहार करना हो तो दो पल दवा भिगो डाले ॥ २७ ॥

उष्णोदक (गरम पानी) ।

अष्टमांशावशेषेण चतुर्थेनार्द्धकेन वा ।
अथवा क्राथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं वदेत् ॥ २८ ॥

जल औटानेपर अग्निके तापसे आवश्यकताके अनुसार अष्टमांश चतुर्थांश अथवा आधा रहजाने पर उतारले या उत्तम रीतीसे औटाले इसे उष्णोदक कहते हैं ॥ २८ ॥

काथादेरवान्तरभेदाल्लेहादिकमाह–

काथादेर्या पुनः पाकाद् घनत्वं सा रसक्रिया ।
अवलेहश्च लेहश्च प्राश[1] इत्युच्यते बुधैः ॥२९ ॥

काथ आदिको दुबारा अग्निके तापसे पकाकर घना किया जाय तो उसे अवलेह कहते हैं । पंडित लोग इसे लेह और प्राश भी कहा करते हैं । चौथे चरणके स्थानमें " मात्रा स्यात्"इत्यादि पाठभी देखा जाता है. इसका अर्थ होता है कि, लेहकी एक पलकी मात्रा होती है ॥ २९ ॥

गोली आदि ।

वटको मोदकः पिण्डी गुडो वर्तिस्तथा वटी ।
वटिका गुटिका चेति संज्ञाऽवान्तरभेदतः ॥ ३० ॥
मा[2]त्राच्छायातपच्छेदवासविश्लेषपेषणैः ।
मन्थपीडनसंयोगजलकालबलाबलैः ॥ ३१ ॥
द्रव्यं गुणान्तराधानं विशिष्टं क्रियते यतः ।
तेन मोदकचूर्णादिवटकाश्च यथाश्रुति ॥ ३२ ॥

---

१ मात्रा स्यात्तत्पलोन्मिता । इत्यपि पाठः ॥

२ अस्यार्थः–मात्रादयश्चैते द्रव्याणां विशिष्टगुणान्तराधानं जनयन्ति, मात्रादिभेदात् । एकमपि द्रव्यं मात्रादिभेदेन विकारविशेषं नाशयति । यथा रसशास्त्रे त्रिविक्रमः–नवायसलौहं शोथपाण्ड्वादीन् हन्ति । त्रिकूत्रयादी लौहश्च ग्रहण्यादिकामित्यनयोर्द्रव्याणां भेदाभावः । किंत्वनयोर्लौहश्च केवलं मात्राभेदस्तेनैव गुणभेदः । एवं सर्वत्र छायातपादिष्वपि ज्ञेयम् । केषाञ्चिद्भेषजद्रव्याणाम् अवान्तरभेदविरहेऽपि छाया शोषत्वेन च गुणभेद इति गुरवः ॥

वटक, मोदक, पिण्डी, गुड, वर्त्ति, वटी, वटिका और गुटिका ये पर्याय वाचक शब्द हैं पर वास्तवमें जुदे हैं, केवल गोली मानकर पर्य्यायका व्यवहार किया है। ये क्रमशः बड़े. जैसे–लड्डू, मुठिया, गोला और बत्तीके वाचक हैं। मात्रा, छाया, आतप, छेदन, वास, विश्लेष, पेषण, मंथन, पीडन, संयोग, जल, काल और बलाबल विशेषसे द्रव्यका गुणभी अनेक तरहका होजाता है। मोदक, चूर्ण और वटिकादिका जिसका जैसा गुण प्रसिद्ध है उसका वैसाही गुण जानना चाहिये ॥ ३०–३२ ॥

द्रव्योंकी मात्राकी विधि।

स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं बलं वयः।
प्रकृतिं देशदोषौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रकल्पयेत् ॥ ३३ ॥
यतो मन्दानला ह्रस्वा हीनसत्त्वा नराः कलौ।
अतस्तु मात्रा तद्योग्या प्रोच्यते शुद्धसम्मता[1] ॥ ३४ ॥

औषधि देनेकी मात्राका कोई नियत नियम नहीं है, अत एव वैद्यको चाहिये कि, रोगीके काल अग्निबल उमर स्वभाव देश और वातादि दोषोंको देख विचार कर औषधिकी मात्रा कल्पित करे। कलिकालमें मनुष्य मन्दाग्निवाले छोटे शरीरके शक्तिहीन होंगे, इस कारण उनके अनुसारही विचारकरके औषधिकी मात्राका प्रयोग करना ठीकहै ३३-३४

मात्राकी प्रशंसा।

नाल्पं हन्त्यौषधं व्याधिं यथाल्पाम्बु महानलम्।
दोषवच्चातिमात्रं स्याच्छस्यमत्युदकं यथा ॥ ३५ ॥

---

१ सर्वसम्मता इति पाठान्तरम्।

जिस प्रकार अत्यन्त प्रज्वलित अग्निके ऊपर थोडासा जल डालनेसे वह अग्नि नहीं बुझती, इसी तरह बडे रोगमें अल्प मात्राकी औषधिका प्रयोग करनेसे रोग दूर नहीं होता, खेतमें अधिक जल वर्षनेसे जैसे शस्य नष्ट होजाता है, उसी तरह साधारण रोगमें औषधिकी अधिक मात्रा प्रयोग करनेसेभी रोगीका नाश होजाता है॥ ३५॥

अन्यच्च-

मात्रया हीनया द्रव्यं विकारं न निवर्त्तयेत् ।
द्रव्याणामतिबाहुल्याद्व्यापत्संजायते ध्रुवम् ॥ ३६ ॥

औषधियां हीन मात्रामें देनेसे विकारको दूर नहीं करती एवम् मात्राकी अधिकाई होनेपरभी निश्चयही विपत्ति पडती है ॥ ३६ ॥

मात्रया नास्त्यवस्थानं दोषमग्निं बलं वयः ।
व्याधिं द्रव्यञ्च कोष्ठं च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥३७॥
उत्तमस्य[1] पलं मात्रा त्रिभिश्चाक्षैश्च मध्यमे ।
जघनस्य पलार्द्धेन स्नेहक्वाथ्यौषधेषु च ॥ ३८ ॥

और जगहभी लिखा है कि, औषधिकी मात्राका कोई नियम नहीं है। दोष, अग्नि, बल, उमर, रोग, औषध और कोष्ठ देखकर

---

१ **उत्तमस्य**-प्रबलाग्निबलपुरुषस्य, न पुनर्युगविशेषजातस्य पुरुषस्य, क्षितौ कलावेव शास्त्रप्रचारात् । सत्ययुगादौ व्याध्यभावात् उत्तमादिशब्दानां युगादीनामनभिधानाच्च पलमत्र सौश्रुतमिति गुरवः । "चरकार्द्धपलोन्मानं चरके दशरक्तिकैः" इति सौश्रुतपलं चरकार्द्धपलम् । त्रिभिरक्षैरिति चरकस्य त्रिभिस्तोलैः । पलार्द्धेनेति चरके कर्षैकेन युगप्रभावाज्जघन्या एव सर्वे अत एव जघन्या मात्रा सर्वेषां दातव्या। किन्तु " कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानाञ्च सर्वशः " इति जघन्यमात्रामाश्रित्य चक्रदत्तेन स्वसंग्रहे लिखितमिति दिक् । क्वाथ्यामत्यर्हणार्थे यत्।क्वाथमर्हति क्वाथ्यम्,तेषु स्नेह-

विचारपूर्वक औषधिकी मात्राका प्रयोग करे । स्नेह और काथ्य औषध प्रबलाग्नियुक्त मनुष्योंके लिये ४ तोलेकी मध्यम, अग्निवालोंके लिये ३ तोलेकी और हीन अग्निवालोंके लिये २ तोलेके परिमाणमें औषधिकी मात्राका प्रयोग करना उचितहै यह स्नेह क्वाथके विषयमेंहै ३७।३८

सार्द्धं पलं पलञ्चार्द्धं विदध्याद्गुडखण्डयोः ।
श्रेष्ठमध्यमहीनेषु मात्रेयं मुनिभिः कृता ॥ ३९ ॥

प्रबलअग्निवालोंके लिये १॥ पल (६ तोला) मध्यम अग्निवालोंके लिये एकपल (४ तोला) और हीन अग्निवालोंके लिये आधापल (२ तोला) ओषधिकी मात्रा प्रयोग करना उचित है ॥ ३९ ॥

अत्र स्यात्सौश्रुतं पञ्चरक्तिमासात्मकं पलम् ।
मोदकं वटकं लेहं कर्षमात्रं प्रयोजयेत् ॥
कर्षद्वयं पलं वापि देयं कोष्ठाग्न्यपेक्षया ॥ ४० ॥

—काथ्यौषधेषु अथवा काथ्यौषधेषु चेति काथ्यमौषधं यैः क्षीरजलकाञ्जिभिः । अतस्तानि क्षीरादीनि भक्षणीयानि । अतो भक्षणमात्रेति गुरव आहुः ॥

सत्य, त्रेता और द्वापरयुगमें सब जीव रोगहीन थे । वैद्यक ग्रन्थ और समस्त औषधियें रोग उत्पन्न होनेके पीछे संग्रह हुई हैं । (इसका विस्तार चरक, सुश्रुत और भावप्रकाशादि ग्रंथोंमें देखो) इस कारण कलिकालमें समस्त जीव तेजहीन और व्याधिग्रस्त हुए हैं । अतएव युगके प्रभावसे औषधिकी हीनमात्राकाही प्रयोग करना चाहिये । ऊपर जिस स्थानमें पल कहा है, सो गुरुके उपदेशानुसारही सुश्रुतोक्त मानमें ग्रहण करना । चक्रदत्तने भी अपने संग्रहग्रंथमें चूर्ण, कल्कका और गुटिकादिके सम्बन्धमें ऐसेही जघन्यमात्रा (हीनमात्रा) प्रयोग करनेकी विधि लिखी है । अतएव औषधादिकी मात्रा गुरुके उपदेशानुसार कल्पित करके प्रयोग करे ॥

सुश्रुतमें पांच रत्तीका माषा कहा है यहां इसी मानसे पल ग्रहण करे. मोदक, वटक और अवलेहादिकी मात्रा एक कर्ष (१ तोला) रक्खे। परन्तु कोष्ठ और अग्निका बलाबल विचार कर दो कर्ष अथवा १ पल (४ तोले) तककी मात्राभी प्रयोग की जा सकती है॥ ४०॥

श्रेष्ठमध्यमहीनेषु द्वादशाष्टचतुष्टयैः।
माषकैर्गुग्गुलोर्मात्रां कोष्ठं वीक्ष्यावतारयेत् ॥४१॥

प्रबल अग्निवालोंके लिये १२ माषा, मध्यम अग्निवालोंके लिये ८ माशा और हीन अग्निवालोंके लिये ४ माषेकी गूगलकी मात्रा कोष्ठके अनुसार विचार कर देना चाहिये ॥ ४१ ॥

धातु रस आदिकी मात्रा।

गुञ्जामात्रं रसं देवि हेमजीर्णं च भक्षयेत्।
तारं त्रिगुञ्जकं प्रोक्तं रविजीर्णं द्विगुञ्जकम् ॥ ४२ ॥
लोहाभ्रनागवङ्गानां खर्परस्य शिलाजतोः।
षड्गुञ्जाप्रतिमा मात्रा मलोपरसमाषकम् ॥४३ ॥
कांस्यपित्तलयोर्मानं भक्षयेत्ताम्रजीर्णवत्।
यवमात्रं विषं देवि गुञ्जामात्रं तु कुष्ठिने॥४४ ॥
वज्रं यवद्वयमितं तालकं यवसप्तकम्।
ततो बुद्धा भिषग्दद्यात्प्रायो मात्रेति कीर्तिता ४५

महादेवजी पार्वतीजीसे कहते हैं कि, हे देवि! पारा और सुवर्ण एक रत्ती, चांदी ३ रत्ती, तांबा दो रत्ती और लोहा, अभ्रक, शीशा, रांग, खपडीया, शिलाजीत छः रत्तीकी मात्रासे और लौह-मैल और उपरस, संयोजकरस यथा शिंगरफादिकी मात्रा एक माषाके परिमाणसे

प्रयोग करे । कांसी और पीतल तांबेकी समान दो रत्ती परिमाणमें, विष एक जौ (परंतु कुष्ठ रोगवालेको एक रत्ती विष दे) हीरा दो जौ और हरिताल सात जौकी मात्रासे बुद्धिमान् चिकित्सक गुण विचार करके प्रयोग करे ॥ ४२–४५ ॥

कलिंग और सौश्रुत मानकी विवेचना ।

कालिंगं सौश्रुतं मानं पञ्चरक्तिकमानतः ।
दशरक्तिकमानं तु मागधं चरकेरितम् ॥ ४६ ॥
तयोर्मागधमानन्तु प्रशंसन्ति भिषग्वराः ।
कालिंगं शुद्धलौहादिद्रव्यस्य कल्पने मतम् ।
कषायोऽनुवासनादिद्रव्यादाने तु मागधम् ॥ ४७ ॥

कालिंगमान और सुश्रुतोक्त मानमें पांचरत्तीका[1] माषा है, मागधमानमें दश रत्तीका माषा चरकमुनिने कहा है । कलिंगमान और मागधमान इन दोनोंमें मागधमान ही चिकित्सकोंके निकट आदरणीय है । शुद्धलौहादिक द्रव्योंकी मात्राकी कल्पनाके प्रयोगमें कलिंगमान और कषाय व अनुवासनादिके द्रव्य ग्रहण आदिमें मागधमान श्रेष्ठ है॥४७॥

पाचनआदिमें जलपरिमाण ।

कर्षादौ तु पलं यावद्दद्यात्षोडशिकं जलम् ।
ततस्तु कुडवं यावत्तोयमष्टगुणं भवेत् ॥ ४८ ॥

---

१ पहिले ६ रत्तीका मागध मास तथा आठ रत्तीका कलिंग मास दिखा चुके हैं जैसा कि, भावमिश्रादिकोंने माना है । यह मतान्तर है ।

चतुर्गुणमतश्चोर्ध्वं यावत्प्रस्थादिकं भवेत्।
[1]क्वाथ्यद्रव्यपले कुर्यात्प्रस्थार्द्धं पादशेषितम् ॥४९॥

पाचनादिक बनानेमें एक कर्षसे लेकर एक पलतक द्रव्यमें सोलह गुणा जल डालकर औटाये। एक पलसे ऊपर कुडव तकके द्रव्य-परिमाणमें आठगुणे जलसे पाक करे। कुडवसे ऊपर प्रस्थ आदि पाचनके द्रव्यका परिमाण जितना हो उसके चौगुने जलसे पाक करे॥ ४८॥ ४९॥

मृदौ चतुर्गुणं देयं कठिनेऽष्टगुणं भवेत्।
कठिनात्कठिनं यच्च दद्यात्षोडशिकं जलम्॥ ५०॥
[2]मृद्वादिद्रव्यसंघाते मानानुक्तौ चिकित्सकाः।
मध्यस्थोभयभागित्वादिच्छन्त्यष्टगुणं जलम्॥ ५१॥

पाचनको मृदु द्रव्य जो कि कुडवका अधिक परिमाण हो तो चौगुने जलसे पाक करे, कठिन हो तो अष्टगुने और अत्यन्त कठिन हो तो

---

१ **क्वाथ्यद्रव्यपले** इति। प्रबलाग्निबलपुरुषापेक्षया क्वाथ्यद्रव्यस्य पलं ग्राह्यम्। तत्साधनार्थं प्रस्थार्द्धं जलं दत्त्वा पादावाशिष्टं कार्यम्। प्रस्थार्धत्वात् जलमष्टगुणं शरावद्वयम् पादशेषेण पलचतुष्टयं ग्राह्यमित्यर्थः॥

प्रबलाग्निवाले पुरुषके लिये एक पल (४ तोले) पाचनके द्रव्यका परिमाण हो तो आध प्रस्थ जल डालकर औटाये। जब चौथाई जल रहनेपर उतार ले। (पर चक्रदत्त द्रव परिभाषासे दूना लेकर सेरसे चौथाई बचा रहे हैं)

२ **मृद्वादि** इति। आर्द्रद्रव्यम् आदिशब्दात् कठिनातिकाठिनयोर्ग्रहणम्। एतेषां मिलितानां द्रव्याणामनुक्तजलपरिमाणानां पाचनादिसाधनविधौ जलपरिमाणम्। मध्यस्य मध्यस्थितस्य मृद्वतिकठिनयोः कठिनस्य जलपरिमाणं प्राक् यदुक्तम् अष्टगुणं तदेव दत्त्वा पक्तव्यम्। उभयभागित्वादिति-उभयोर्मृद्वतिकाठिनस्य जलपरिमाणं प्राग्यदुक्तम्॥

१६ गुना जल डाले । जो पाचनमें मृदु कठिन और अत्यन्त कठिन द्रव्य मिलेहों तो आठ गुण जलसे पाक करे-क्योंकि, मध्यमान दोनों-मेंही संभाला जासकताहै ॥ ५० ॥ ५१ ॥

पाचनोंके द्रव्यका मान ।

दशरक्तिकमानेन गृहीत्वा तोलकद्वये ।
दत्त्वाम्भः षोडशगुणं ग्राह्यं पादावशेषितम् ।
इमां मात्रां प्रकुर्वन्ति भिषजः पाचनेषु च ॥ ५२ ॥

जिस मानमें दश रत्तीका माषा होता है उसमें पाचनके द्रव्य दो तोले ग्रहण करके १६ गुने (३२ तोले) जलमें पकाकर चौथाई (८ तोले) बाकी रह जानेपर उतारले । वैद्योंको पाचनमें ऐसीही मात्राका प्रयोग करना चाहिये ॥ ५२ ॥

यवागूआदिमें जल और दवाका मान ।

क्वाथ्यद्रव्याञ्जलिं क्षुण्णं श्रावयित्वा जलाढके ॥ ५३ ॥
पादावशेषे तेनाथ यवाग्वाद्युपकल्पयेत् ।
यूषांश्च रसकांश्चैव कल्पेनानेन साधयेत् ॥ ५४ ॥

चार पल काथके द्रव्य लेकर भलीभांति कूटे और एक आढक यानी सोलहगुणे जलमें पकावे, चौथाई बाकी रहजानेपर उतार छान ले फिर इसीसे यवागू आदि पाक करे । यूष और रसादिकोंको भी इसी तरह करे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

षडङ्गजल या काथसे मांड, पेया, यवागू, यूष और मांसरस ।

यदप्सु शृतशीतासु षडङ्गादि प्रयुज्यते ।
कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत्प्रास्थिकेऽम्भसि ॥ ५५ ॥

---

१ शा. सं, यें आधा जल बाकी रहजानेपर यवागू सिद्ध करनेको कहते हैं ।

अर्द्धशृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादिसंविधौ ॥ ५६ ॥

षडंग[1] जल बनाना हो, या क्वाथसे मांड, पेया, यवागू, जूस और मांस–रस (यखनी) आदि सिद्ध करना हो तो इसमें जिन औषधियोंकी आवश्यकता हो उनको बराबर एक कर्ष ग्रहण कर एक प्रस्थ जलमें सिद्ध करे, आध प्रस्थ जल रह जानेपर उतारकर छान ले, शीतल होजाय तो इसे पीनेके या मंड, पेयादि, पाक करनेमें प्रयोग करे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

÷ कल्कसाध्य पेया ।

कर्षार्द्धं[2] वा कणाशुण्ठ्योः कल्कद्रव्यस्य वा पलम् । विनीय पाचयेद्युक्त्या वारिप्रस्थेन चापरान्[3]॥५७॥

÷ कल्कसाध्य पेया–कल्कसे पेया बनाना हो तो आधा कर्ष पीपल और आधा कर्ष सोंठ ले या दोनों मिली हुई आधा कर्ष ले, कल्क द्रव्य (चावलादि) ४ तोले लेकर ६४ तोले जलमें पकाये, आधा

---

१ चक्रदत्तके टीकाकार हिन्दू विश्व विद्यालयके आयुर्वेद शास्त्रके अध्यापक पं. जगन्नाथ प्रसादजी आयुर्वेदाचार्य्यने लिखा है कि, जल द्रव होनेसे "द्रव्य-द्वैगुण्यामिति नियमात्" दुगुना ले इस नियमसे १२८ तोले ले ॥

३ चक्रदत्ते 'चापराम्' इति पाठः ।

२(केसरीटीकाकारः)। **कर्षार्द्धमित्यादि**–कणा शुण्ठी च तयोर्मिलित्वा कर्षार्द्धं गृहीत्वा कल्कद्रव्यस्य च तण्डुलादेः पलम् । विनीयेति पाठे नीत्वा इत्यर्थः। विलीयेति पाठे कल्कीकृत्येत्यर्थः। वारिप्रस्थेनेति एकत्वमविवक्षितम् । अग्न्याद्यपेक्षया अधिकेनेति यावत् । तेन प्रस्थद्वये जले साधयित्वार्द्धश्रृतेन वारिप्रस्थेन युक्त्या किञ्चिन्न्यूनेन अधिकेन वा प्रबलाग्निपुरुषापेक्षया 'इत्थञ्चापरान्' कल्कसाध्यां यवागूं पाचयेत् सुसिद्धां कुर्यादित्यर्थः । एवमन्यत्रापि पेयादिसाधने प्रबलाग्निपुरुषादौ युक्त्या प्रचुरतरं सलिलं कल्कद्रव्यं वा ग्राह्यम् ॥ इसका अर्थ टीकामें दिखा चुके हैं ।

रह जानेपर उतार ले (यहांपर यह जानना आवश्यक है कि, प्रबलाग्नि, समाग्नि और अल्पाग्निवालोंके भेदके अनुसार कल्कके सिद्ध करनेकी जलकी मात्रा भी अलग २ होती है। यही कारण है प्रस्थमें एकत्व अविवक्षित किया कि, आवश्यकतानुसार जलके लिखे हुए परिमाणकी अपेक्षा पेयादि साधनमें थोडा या बहुत (कम या ज्यादा) जलका परिमाण दिया जा सकता है, दो भी लिया जा सकता है संस्कृत टीकाको साधारणतः दोही इष्ट हैं चतुर वैद्योंको विचार कर जलकी मात्रा देनी चाहिये) ॥ ९७ ॥

विशेष विचार।

कणाशुण्ठ्योः कर्षार्द्धं गृहीत्वा क्वाथ्यद्रव्यस्य पलञ्च प्रस्थद्वयेऽम्भसि अर्द्धश्रृतीकृत्य वारिप्रस्थं वस्त्रेण च्छानयित्वा नातिसान्द्रां नातिस्वच्छां यवागूं साधयेत् (कणाशुण्ठ्योः प्रत्येकं कार्षार्द्धं कृत्वा पृथग्योगोऽयमिति कश्चित्)। ननु यद्येवं भेषजं क्वाथः सामान्याधिक्ये पतति तत् किमर्थं " कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत् प्रास्थिकेऽम्भसि " इति षडङ्गपरिभाषा ? अत आह–षडङ्गपरिभाषायां प्राय इति प्राचुर्येण प्रचुरस्थले " षडङ्गपरिभाषिव प्रायः पेयादिसम्मता " पेयादिषु कीर्तिता। पेयादिषु मन्यत इति यावत्। अयमर्थः–प्रायेण षडङ्गपरिभाषिव व्यवहार इति षडङ्गपरिभाषोक्ता। प्रबलाग्निपुरुषे तु बहुभक्तरि स्तोकतोयेन यवागूर्न सिद्ध्यति, युक्त्या क्वाथप्राबल्यं केशाकृष्ट्या पतितमिति सर्वमवदातम्॥

पीपल और सोंठ आध कर्ष लेकर जिसका क्वाथ करना हो उसे एक पल लेकर दो प्रस्थ पानीमें चढा दे, आधा बाकी रह जानेपर उससे ऐसी यवागू बनाये न तो अत्यन्त सान्द्र हो एवम् न अत्यन्त स्वच्छ (जल जैसी) ही हो। इसके बारेमें कोई कहते हैं कि, इसमें सोंठ और पीपल प्रत्येक आध २ कर्ष

पड़कर एक पृथक् योगही तैयार होता है । (ऐसा शार्ङ्गधरमें देखते हैं) इस पर यह शंका होती है कि, यदि ऐसाही है तो भेषज क्वाथ सामान्यसे अधिकमें पहुंचता है। फिर इसके पीछे जो सामान्य परिभाषाका विधान किया है वो किस लिये है ? इसपर कहते हैं कि, वहुतायतसे पहिले कही हुई षडंग परिभाषाही पेयादिकोंमें कही है- क्योंकि, वही पेयादि संमत है, वही मानी जाती है. प्रायः षडंग परिभाषासेही व्यवहार होता है इसी लिये वो कही है। पर. बहुत खानेवाले पुरुषके लिये थोडे पानीसे यवागू सिद्ध नहीं हो सकती, इस कारण क्वाथका बढाना अपने आप सिद्ध हो गया जैसे कि, वालोंके खींचनेसे पुरुषका खींचना सिद्ध होता है इससे प्रस्थसे कम ज्यादा करना ठीकही है ।

निश्चलकारेण तु पलमत्र सौश्रुतमित्यवधेयमिति व्याख्यातम् । अत्र नारायणदासेन व्याख्यातम्—कणाशुण्ठयोः कर्षार्द्धं वेति तीक्ष्णद्रव्योपलक्षणम् 'कल्कद्रव्यस्य वा पलम्' इति मृदुद्रव्योपलक्षणं मृदुकठिनयोर्युक्त्या कर्षद्वयमिति । अपरानिति ये यवाग्वादयः षडङ्गपरिभाषया सिद्धाः न तदर्थेयं परिभाषा, किन्तु तदितरार्थेयमित्यर्थः । आकृतिपूर्वमत्र कर्षमात्रं द्रव्यमुक्तम् । अत्र तु कर्षाधिकमपि पूर्वत्र तु प्रस्थमात्रं जलमुक्तम् । अत्र प्रबलाग्निबलपुरुषार्थं बहुयवागूसाधने प्रस्थाधिकमपि गृह्यते, क्वचित् प्रस्थन्यूनेऽपि यूषः साध्यते, पूर्वमर्द्धश्टतजलमुक्तम्, अत्र तु क्वचित् पादावशिष्टमपि मांसरसे साध्यमाने पानयोग्यावशिष्ट इति युक्तिशब्दार्थः । तदेतद्युक्तं भवति—

निश्चलकारने तो ' यहां पल सौश्रुत लेना ऐसा व्याख्यान किया है. पीपल और सोंठका आधे कर्षका विधान तीक्ष्ण द्रव्यका उपलक्षक है, सारे तीक्ष्ण द्रव्य इसी हिसाबसे लेने चाहियें । यह जो ' कल्कद्रव्यस्य वा पलम् ' कल्क द्रव्यका एक पल विधान किया है यह मृदु द्रव्यका उपलक्षक है यानी मृदु द्रव्यका उपलक्षक है कि, मृदुद्रव्य एक पल लेने चाहियें । मृदु और कठिनको युक्तिसे दो कर्ष लेने चाहियें । ' अपरानिति ' यह जो कहा है इसका तात्पर्य्य यह है कि,

जो यवागू आदि षडंग परिभाषासे सिद्ध होते हैं उनके लिये यह परिभाषा नहीं है किन्तु उससे भिन्नोंके लिये है । षडंग परिभाषासे सिद्ध होने वालोंमें तो ' कर्षमात्रं ततो द्रव्यम् ' इस शब्दसे कर्षमात्रही कहा है पर इसमें तो कर्षसे भी अधिक लिया जासकता है षडंग परिभाषामें तो प्रस्थमात्र पानी कहा है । यहां तो प्रबल अग्निवाले बहुभोजी बलवान् पुरुषकी अपेक्षासे प्रस्थसे अधिक पानी भी लिया जा सकता है एवं कहीं कम भी लेकर यूष सिद्ध किया जाता है। पहिलेमें तो आधा पानी जलाना लिखा है, यहां तो चौथाई एवम् मांस रसादि सिद्ध करना वह पीने लायक बच जाना भी युक्ति शब्दके बलसे सिद्ध होता है । यही युक्ति शब्दका तात्पर्य्य है। इस सबसे यह सिद्ध होता है जो निम्न लिखित श्लोकोंमें कहेंगे–

यवागूः षड्गुणे तोये प्रस्थे प्रस्थाधिकेऽपि वा ।
रसेन पाके मांसस्य सुसिद्ध्यति हि यावता ।
अष्टांशिष्टो भवेद्यूषः क्वचित्पादावशेषतः ।
अष्टादशगुणे तोये यूषः शार्ङ्गधरेरितः । इति ॥

छः गुने पानीमें यवागू सिद्ध होती है। एवम् प्रस्थ तथा प्रस्थसे अधिक जलमेंभी सिद्ध होती है तथा मांसके रससे पाक करती बार भलेही पीने लायक बाकी रहजाय या चौथाई बाकी रह जाय । शार्ङ्गधरजीने तो अठारह गुनें पानीमें यूष सिद्ध करनेको कहा है ।

गुरवस्त्वाहुः–परिभाषेयं पानीयसाधनविषयिणी चक्रपाणिदत्तेन पानीयसाधनप्रकरणे षडङ्गपानीयत्र्यङ्गपानीयानन्तरं पिप्पलीपानीयं लिखितम "कणाशुण्ठ्योः कर्षार्धं वारिप्रस्थेन साध्यम् " । ननु अत्र कल्कद्रव्यस्य वा पलमिति कथमुक्तम ? अत आह. नारायणान्तरङ्गः–मृदुद्रव्य उपलक्षणमिति । यद्यपि पिप्पलीये पानीये आनुषङ्गिकत्वाद्युक्त्या परान् यूषान् पेयादीन् वा धात्वपेक्षया साधयेत् । तदा तण्डुलादीनां पलं कल्कीकृत्य वारिप्रस्थेनार्द्धश्रृतेन साध्यम्, अतः " षडङ्गपरिभाषैव प्रायः

पेयादिसम्मता" इत्युक्त्वा पश्चादेषा लिखिता, पेयादयस्तु षडङ्गपरिभाषया सर्वत्र साधनीयाः, प्रायःशब्दात् प्रचुरस्थले षडङ्गपरिभाषा सम्मता तदितरार्थेयमिति ॥

गुरु लोग तो ऐसा कहते हैं कि, यह परिभाषा साधारण पानीके विषयकी है. क्योंकि, चक्रपाणिदत्तने पानीके साधनके प्रकरणमें षडंग और त्र्यंग पानी कहकर पीछेसे पीपलका पानी लिखा है कि, पीपल और सोंठका आधाकर्ष एक प्रस्थ जलसे सिद्ध करे। इसपर शंका करते हैं कि, परिभाषामें विकल्पमें कल्कद्रव्यका पल क्यों लिखा? इसपर नारायणने लिखा है कि, जैसे सोंठ पीपल ग्रहण तीक्ष्ण द्रव्योंका उपलक्षक है इसी तरह 'कल्कद्रव्यस्य वा पलम्' यह पल ग्रहण मृदुका उपलक्षक है कि, मृदु द्रव्य एक पल ले। यदि ऐसा प्रसंग आलगे कि, पीपलके पानीमें दूसरे यूष सिद्ध करने हों तो युक्तिपूर्वक धातुकी अपेक्षासे सिद्ध करे। उस समय एक पल तण्डुल लेकर कल्क करे फिर एक प्रस्थ पानीमें आधा रहजानेपर उतारले इस कारण षडंग परिभाषाही प्रायः पेयादिमें संमत है। इस कारण वो पहिले कही गई है पीछे यह लिखी है। सब जगह पेयादिक तो षडंग परिभाषासेही सिद्ध करने चाहिये। इस प्रायः कहनेका यही मतलब है अधिक स्थलोंमें षडंग परिभाषाही संमत है यह तो उससे दूसरोंके लिये है।

विवेचनाका सार।

यहांपर यह प्रश्न होसकता है कि, यदि औषधि और क्राथद्रव्यकी इस प्रकार साधारण अधिकाई हो, तो दो सेर जलमें एक तोला औषधिको औटानेकी जो षडङ्गपरिभाषा लिखी है, उसका तात्पर्य क्या है? इसका उत्तर यही है कि, यदि बहुत पेयादि बनाना हो तो षडङ्गजल बनानेके विधानसे पेयादि बनावै। प्रबलाग्नियुक्त, बहुत भोजन करनेवालेके लिये जो यवागूका पाक करना हो तो वह थोडे जलसे नहीं होता, बस, चावलोंके परिमाणके अनुसार क्राथ और क्राथके परिमाणानुसार औषधिभी अधिक डाले, जैसे किसीके केश खेंचनेसे उसके साथ उसके सारे अंगप्रत्यंग खिंचते हैं,यहभी ऐसेही है।

निश्चलकारने व्याख्या की है कि—यहांपर सुश्रुतमें कहा हुआ पल (पांच रत्तीमाषके मानका) ग्रहण करना चाहिये । नारायणदासने व्याख्या की है कि पीपल और सोंठ केवल उपलक्षण हैं, समस्त तीक्ष्ण द्रव्योंको अर्द्धकर्ष (आधातोला) के परिमाणमें ग्रहण करे । समस्त मृदुद्रव्य एकपल (चार तोला) और मृदु व कठिन मिश्रित द्रव्य दो कर्ष दो तोले ग्रहण करे । षडङ्गकी परिभाषाके अनुसार जो यवागू आदि बनते हैं, उन स्थानोंके लिये यह परिभाषा नहीं है, इनके सिवाय और सब स्थलोंमें इस परिभाषाके अनुसार यवागू आदि तैयार होते हैं ॥ चक्रपाणिदत्त और शार्ङ्गधरकाभी मत यही है । पहिले लिखेहुए मतसे प्रबलाग्नि मध्याग्नि और हीनाग्निवालोंको विचार कर, यवागू पेया और यूषादिकी औषधि जल और मात्राका विधान करदे । यवागू मण्ड और पेयादिको सिद्ध करनेकी रीति और लक्षण आगे लिखे जाते हैं ॥

यवागूके लिये तण्डुल ।

यवागूमुचिताद्भक्ताच्चतुर्भागकृतां वदेत् ॥ ५८ ॥

यवागूकी मात्रा स्वभावसेही जितने चावल खानेका अभ्यास हो उससे चौथाई (कूटेहुए चावल) ले उनसे यवागू पाक करे ॥ ५८ ॥

अन्न, विलेपी, मांड और पेयामें पानी ।

अन्नं पञ्चगुणे साध्यं विलेपी च चतुर्गुणे ।
मण्डश्चतुर्दशगुणे यवागूः षड्गुणेऽम्भसि ॥ ५९ ॥

---

१ उचिततण्डुलाच्चतुर्भागैकभागमानं क्षुद्रिततण्डुलमाहुस्तैः कृतां यवागूं वदेदित्यर्थः । जाऊ इति लोके ।

जितने चावल हों उससे पंचगुणे जलमें अन्न सिद्ध करे । विलेपी चौगुणे जलमें एवं मांड चौदह (१४) गुणे जलमें और पेया छः गुने जलमें सिद्ध होती है ॥ ५९ ॥

मंड पेया और विलेपीके लक्षण ।

सिक्थकै रहितो मण्डः पेया सिक्थसमन्विता ।
यवागूर्बहुसिक्था स्याद्विलेपी विरलद्रवा ॥ ६० ॥

जिसमें जराभी कण न हों उसे मंड कहते हैं । जिसमें थोडे कण हों उसे पेया कहते हैं, जिसमें बहुत कण हों वो यवागू, जिसमें कण अधिक हों तरलता थोडी हो उसे विलेपी कहते हैं ॥ ६० ॥

अन्नस्वरूप यवागू या खिचडी ।

यवागूः षड्गुणे तोये सिद्धा स्यात्कृशरा घना ।
तण्डुलैर्मुद्गमाषैश्च तिलैर्वा साधिता हिता ॥
यवागूर्ग्राहिणी बल्या तर्पणी वातनाशिनी ॥ ६१ ॥

शा० संहितामें इस प्रकार कहा जाता है कि, जितने द्रव्यकी यवागू बनानी हो उससे छः गुणे जलमें उसे डाल जबतक गाढी न हो औटाता रहे । वह गाढी होकर खिचडी जैसी होजाती है चावल, मूंग, उरद और तिल इन द्रव्योंमेंसे किसीसेभी तैयार करने पर विशेष हितकारी होती हैं । इसके कृशरा और घना ये दो नाम हैं । यह यवागू मलादिकोंको स्तंभन, बल, वृद्धि, शरीरकी पुष्टि और वायुका नाश करनेवाली है ॥ ६१ ॥

विलेपीकी रीति ।

विलेपी च घना सिक्था सिद्धे नीरे चतुर्गुणे ।
विलेपी तर्पणी हृद्या मधुरा पित्तनाशिनी ॥ ६२ ॥

विलेपी—द्रव्यसे चौगुने जलमें औटावे, जब वो लपसीके समान गाढी और लिपटनेवाली होजावे उस समय उतारले। यह धातुकी वृद्धि करनेवाली, शरीरको पुष्ट करनेवाली, हृदयको हितकारि मधुर और पित्तका नाश करनेवाली है ॥ ६२ ॥

पेया और यूषका बनाना।

द्रवाधिका स्वल्पसिक्था[1] चतुर्दशगुणे जले।
सिद्धा पेया बुधैर्ज्ञेया यूषः किंचिद्घनः स्मृतः ॥६३॥

पेया—द्रव्यसे चौदहगुने जलमें डाल पेजके समान पतली पर तहस दार होनेपर उतार लिया जाने पर पेया तैयार होती है। यूष—यदि वो पेयासे अधिक गाढा होजाय तो यूष कहायेगा ॥ ६३ ॥

दोनोंके गुण।

पेया लघुतरा ज्ञेया ग्राहिणी धातुपुष्टिदा।
यूषो बल्यः स्मृतः कण्ठयो लघुपाकः कफापहः ॥६४

पेया—बहुत हलकी, मलादिको स्तंभन करनेवाली और धातुको पुष्ट करनेवाली है। यूष—बलदायक कंठको हितकारी हलका तथा कफको दूर करनेवाला है ॥ ६४ ॥

मांड तथा भातकी रीति।

विपचेत्स्रावयेन्मण्डः स भक्तो मधुरो लघुः।
जले चतुर्दशगुणे तण्डुलानां[2] चतुःपलम् ॥ ६५ ॥

चार पल (१६ तोले) चावल चौदह गुने जलमें डालकर औटाले, चावलोंके अच्छीतरह सिद्ध होजानेपर मांडके निकाल लेनेसे भात तैयार होजायगा, यह मधुर तथा हलका होता है, जो इससे निकाला वो साधारण मांड़ होगा ॥ ६५ ॥

---

१ घना इति पा०। २ तण्डुलानामिति। क्षुद्रिततण्डुलानामित्यर्थः। स्रावयेदिति वस्त्रादिना चालयेत्।

शुद्धमण्ड।

नीरे चतुर्दशगुणे सिद्धो मण्डस्त्वसिक्थकः॥६६॥

शुद्धचावलोंको चौदह गुने पानीमें डालके औटाये चावलोंके पूर्ण सिद्ध होजानेपर छान ले, जो मांड निकलेगा वो गाढा बिलकुल न होना चाहिये ॥ ६६ ॥

षडंग मांस यूष।

द्रव्यतो द्विगुणं मांसं सर्वतो द्विगुणं पयः।
पादस्थं संस्कृतं ह्येषः षडङ्गो यूष उच्यते ॥ ६७ ॥

द्रव्य (दालादि) से दूना मांस ग्रहण करे। सबका वजन जितना हो उससे ८ गुने जलमें पकाये । चौथाई पानी बाकी रहजाने पर उतार ले । इसको षडङ्ग मांस यूष कहते हैं ॥ ६७ ॥

मांसका घनरस अच्छतर और वटक।

पलानि द्वादशप्रस्थे घने[2]ऽथ तनुके तु षट्।
मांसस्य वटकं कुर्यात्पलमच्छतरे रसे ॥ ६८ ॥

घनमांसरस बनाना हो तो १२ पल मांस प्रस्थ जलम सिद्ध करे। मांसका पतलारस करना हो तो ६ पल मांस,प्रस्थ पानीमें तैयार करे।

---

१ **असिक्थ** इति सिक्थकराहित इत्यर्थः । अन्नादिराहितसिक्थकः कुर्यादितिलोके।
२ **अस्यार्थः**-:घने मांसरसे कर्त्तव्ये प्रस्थे जले मांसस्य द्वादशपलं दत्त्वा पक्तव्यम् । तदनु तनुके रसे कर्त्तव्ये मांसस्य षट्पलं पानीयं प्रस्थमेव दातव्यम् । अच्छतरे रसे कर्त्तव्ये प्रस्थे जले मांसस्य पलं दत्त्वा तन्मांसं पिष्ट्वा प्रस्थार्धशेषास्थितजले पक्त्वा अनुरूपं स्थाप्यं वस्त्रेण छानयित्वा यूषः कार्यः । मांसस्य वटकं कुर्यादिति स्विन्नमांसस्य पलं पिष्ट्वा वटकान् विधाय घृतादौ भर्जयित्वा अच्छतररसे साध्यमित्यर्थः । अन्यथा मांसपलस्यातिद्रवपाके विलयनं स्यादित्यच्छतरे रसे वटके कुर्यादित्याह । इसका सार ६८ के अर्थमें आगया है। इस कारण जुदा अर्थ नहीं देते ।

' अच्छतर ' मांसरस बनाना हो तो एक पल मांस चारसेर जलके साथ सिद्ध करे। चौथाई रहनेपर उतार ले। अच्छतर मांसका रस बनाना हो तो पहले एकपल मांसको पत्थरपर पीसे फिर उसे एक प्रस्थ पानीमें चढा दे फिर अनुरूप पानी बाकी रहजानेपर छान ले। यदि इसमें मांसके वटक बनाने हों तो उसे पत्थरपर पीसकर गोलियां बना घीमें भून लेना चाहिये। क्योंकि, थोडासा मांस बहुतसे जलके साथ सिद्ध किया जाय तो उसका गलजाना संभव है। फिर उसे अच्छतर रसमें सिद्ध करना चाहिये ॥ ६८ ॥

लाक्षारस।

षड्गुणेनाम्भसा लाक्षा दोलायंत्रे ह्युपस्थिता।
त्रिसप्तधा परिस्राव्या लाक्षारसमिदं विदुः ॥ ६९ ॥

लाखका जितना वजन हो,उससे छःगुने जलमें दोलायन्त्रमें पकाकर इक्कीसवार पसाले। पंडित लोग इसीको लाक्षारस कहते हैं॥ ६९॥

क्वाथ और स्नेहमें गिरानेकी वस्तुका परिमाण।

प्रक्षेपः[1]पादिकः क्वाथ्यात्स्नेहे कल्कसमो मतः।
परिभाषामिमामन्ये प्रक्षेपेऽप्यूचिरे यथा ॥ ७० ॥

---

१ स्नेहे पातव्यघृतादिसाधने तैलादिसाधने वा प्रक्षेपः कल्कसमो मतः जायतेस्म इत्यर्थः। शर्करामधुप्रभृतीनामिति क्वाथ्यादिति पाचनादिद्रव्यात् कर्षात् प्रक्षेपः पादिकश्चतुर्माषको ज्ञेय इति चक्रपाणिदत्तसम्मतः। अन्येऽपि वृद्धादय इमां परिभाषां प्रक्षेपेऽपि ऊचिरे परिभाषयांबभूवुः। अत एव चक्रदत्तोऽपि तत्स्वीकृत्य स्वसंग्रहे लिखितवान् ॥

यह चक्रदत्तका मत है। पाचनादिके प्रक्षेपका परिमाण अलग लिखा है। इसका सार ७० के अर्थमें आगया है इस कारण इसकी भाषा यहां जुदी नहीं देते।

क्काथमें जो वस्तु (मधु चीनी आदि) डालनी हो तो उसका परिमाण क्काथ्यका चौथा अंश है, घी तैलादि स्नेह द्रव्यमें जो चीज डालनी होती है, उसका परिमाण कल्कके ही समान है॥७०॥

चूर्णके खाने चाटने और पीनेकी रीति।

कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य गुडिकानाञ्च सर्वशः।
द्रवशुक्त्या स लेढव्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवः॥ ७१ ॥

---

१ चूर्णं कल्को गुडिका, चकारात् वटिका च यद्युपयुज्यते, च तर्हि सर्वत्र वक्ष्यमाणविशेषं विना तोलकद्वयमुपयुज्यते। स चूर्णादेः कर्षः यदि लेढव्यः तर्हि द्रवशुक्त्या माक्षिकप्रभृतीनाम् अर्द्धपलेन तोलकचतुष्टयेनेति यावत्। चूर्णस्य तथा लेढुं सुखत्वात्। पातव्यश्चेत्तदा चतुर्द्रव इति माक्षिकादीनां चतुर्गुणेन पलेनेति शेषः। तथा सति चूर्णस्य पातुं सुखत्वादित्यस्य प्रधानार्थः सांप्रदायिकैश्चक्रदत्तादिभिर्मन्यते। अन्ये तु प्रक्षेप्येन मन्यंते। तथा हि तेषामयमर्थः—यत्र चूर्णस्य कल्कस्य गुडिकानाञ्च भेषजानामुपयोगस्तत्र कर्षप्रक्षेपो दातव्यः। शेषार्थः सुगमः। मात्रा क्षौद्रघृतादीनामिति क्षौद्रप्रभृतीनां मधुघृतगुडानां स्नेहे क्काथे वा प्रक्षेपश्चूर्णवत्। चूर्णस्य उक्तः तर्हि यत्र घृतादयः प्रक्षेपास्तथैषां घृतक्षौद्रादीनां कर्ष इत्यर्थः। एतन्न, रास्नादिक्काथस्य कर्षस्य प्रक्षेप्यं मिलितयोः शर्करामधुनोः पादिकं माषचतुष्टयं प्रक्षेप्यमिति साम्प्रदायिकमतम्। यदुक्तमन्यत्र—'प्रक्षेपः पादिकः क्काथ्यात् स्नेहे कल्कसमो मतः' इति। अन्ये तु शर्करामधुनोः प्रत्येकं द्रंक्षणं कृत्वा मिलित्वा द्रंक्षणद्वयं कर्षं दातव्यमाहुः—'शाणौ द्वौ द्रंक्षणं विद्यात् तौ द्वौ कर्ष उदुम्बरः।' परमव्याहतमनुमतमेवेति न्यायात्। चक्रदत्तानुमतमेतत्। किन्तु सर्वत्र मैवम्। अपितु क्वचित् किञ्चिद्दोषवयोवह्न्याद्यपेक्षया इत्यवधेयम्। वस्तुतस्तु वातज्वरार्ते रास्नादिकषाये शर्करामाषकत्रयं मधु माषैकं प्रक्षेप्तुमर्हति यथा चैतत्। "तथा-षोडशाष्टचतुर्भागं वाते पित्ते कफे क्रमात्। क्षौद्रं कषाये दातव्यं विपरीता तु शर्करा" इति संहितोपाये स्वयमेव चक्रेण व्याख्यातम्। इदं तु पादिकः प्रक्षेपात् क्रियासिद्धिरि-

चूर्ण, कल्क, गुडिका और वटिका आदिकी मात्रा एक कर्ष (एक तोला) की होती है। लेह करके सेवन करना हो तो औषधिसे दूने द्रव (तरल) पदार्थके साथ और पान करके सेवन करना हो तो औषधिसे चौगुने द्रवपदार्थके साथ प्रयोग करना चाहिये ॥ ७१ ॥

स्नेह क्वाथादिकोंमें शहद घृतकी मात्रा ।

मात्रा क्षौद्रघृतादीनां स्नेहक्वाथेषु चूर्णवत् ॥

स्नेह और क्वाथमें, शहद और घृतादिके डालनेकी मात्रा चूर्णादिके समान एक कर्ष (एक तोला) है ॥

गौण मुख्यमें चूर्ण मात्रा विचार ।

क्वाथेन चूर्णपानं यत्तत्र क्वाथप्रधानता ।
प्रवर्त्तते न तेनात्र चूर्णापेक्षश्चतुर्द्रवः[1] ॥ ७२ ॥

–त्यभिप्रायेण तन्नाभिहितम, हेयमन्यत्। किञ्च चूर्णवदिति प्रक्षेप्यं क्षौद्रघृतादीनामपि चूर्ण इव चूर्णस्य जरणादेर्यथा शाणः प्रक्षेपस्तथा क्षौद्रघृतादीनामपि शाणो देय इति गुरवः। प्रक्षेपपादिकः क्वाथ्यादिति वाक्यस्य एकवाक्यत्वान्मनोहरम् ॥

इस टिप्पणीमें तोल दुगनी लगाई है, सबके यहां पल ४ कर्ष यानी चार तोले भरका होता है, पर इनके यहां पल आठ तोलेका लिखा है इस विषयपर दूसरे दूसरे टीका-कारोंको इससे विपरीत देखते हैं, वे ४ तोलेका ही पल मानकर व्यवहार कर रहे हैं इस विषयमें हम अपनी कुछ भी सम्मति न देंगे, चतुर वैद्य जो उचित समझें उस रीतिसे व्यवहार करें। हमें तो आठ तोलेका पल विना संकेतके माननेमें अनेक अडचलें दीखती हैं। टिप्पणीका सार अर्थ ऊपर कह दिया है।

१ यत्र चूर्णपानं यौगिकं तत्र चूर्णस्य प्राधान्यात् कर्षमानम् तस्मात् क्वाथ्यं चतुर्गुणम्, तस्य क्वाथस्य तत्र प्राधान्यम्, यत्र क्वाथेन सह प्रक्षेप्यस्य चूर्णस्य पानं तत्र क्वाथस्य प्रधानत्वाच्चूर्णापेक्षी चतुर्द्रवः चतुर्गुणत्वं द्रवस्य न प्रवर्त्तत इति ॥

इसका सार टीकामें दिखाया जा चुका है।

चूर्णके साथ क्काथका प्रयोग करना हो तो (चूर्णकी प्रधानताके कारण) उससे चौगुना क्काथ ले पर प्रधान क्काथके साथ चूर्णके प्रयोगके सम्बन्धमें ऐसा नियम ठीक नहीं है । यह विधि केवल चूर्ण औषधके प्रयोगके सम्बन्धमें जानना । जहांपर कषायपानकी विधि होगी और कषायकी प्रधानता दिखाई देगी, वहांपर उमर और बलाबलका विचार करके चतुर वैद्य कषाय और चूर्णकी मात्रा कल्पित करें ॥७२॥

द्रव्य डालनेमें मतान्तर ।

माषिकं हिंगु[1]सिन्धूत्थं जरणाद्यास्तु शाणिकाः ।
सिता पला गुडक्षौद्रे सामान्यांशप्रकल्पनाः ॥७३॥

कोई २ कहते हैं कि, हींग और सेंधानमक (तीक्ष्ण होनेसे) एक माषा एवं जीरे आदि एक शाण डालने चाहिये, चीनी, शिलाजीत, गुड और मधु आदि डालने हो तो सामान्य अंशकी कल्पना करे यानी गुरुके उपदेश और साधारण वचनके अनुसार प्रबलाग्नि, मध्यमाग्नि और क्षीणाग्नि पुरुषोंको क्रमके अनुसार एक पल (४ तोले) तीन कर्ष(३ तोले) और अर्द्धपल (२ तोले) की मात्राका प्रयोग करे॥ ७३

क्वाथमें दोष भेदसे शहद और चीनी ।

षोडशा[2]ष्टचतुर्भागं वातपित्तकफार्तेषु ।
क्षौद्रं कषाये दातव्यं विपरीता तु शर्करा ॥ ७४ ॥

---

१ हिंगुसैन्धवयोः प्रक्षेपयोस्तैक्ष्ण्यान्माषिकम्, जीरकाद्याः पुनः क्काथ्यापादिका एव । सितापलासिताशर्करादीनाञ्च सामान्यानां सामान्यवाक्यानाम् ' उत्तमस्य पलं मात्रा ' इत्यादीनामिव अंशांशकल्पनाः कार्या इति सामान्यांशम् । पलत्रिकर्षार्द्धपलरूपं सौश्रुतमित्यर्थः । सामान्यमिति । 'प्रक्षेपः पादिकः क्काथ्यात् ' इति तेन पादिका इति गुरवः । इसका भाव टीकामें आगया है ॥

२ षोडशाष्टचतुर्भागमिति । वायौ पित्ते च कफे च कषायपाने क्षौद्रं

क्वाथमें शहद डालना हो तो वायुकी अधिकतामें क्वाथके सोलहवां हिस्सा, पित्तकी अधिकतामें आठवाँ भाग और कफकी अधिकतामें क्वाथका चौथा भाग शहद डालना चाहिये। चीनीके डालनेकी रीति इससे उलटी है। वायुकी अधिकतामें क्वाथसे चौथाई, पित्तकी अधिकतामें आठवां भाग और कफकी अधिकतामें क्वाथका सोलहवां भाग चीनी डाली जाती है॥ ७४॥

दूध पाक।

द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम्।
क्षीरावशेषः कर्त्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः॥७५॥

जिस द्रव्यके साथ दूध पकाना हो उससे आठ गुने दूधमें दूधसे चौगुना जल डालकर उसे पकावै। जब देखे कि, जलका अंश जलगया केवल दूध बाकी रहा है, तो झट उतार ले। क्षीर पाकमें यह विधि है॥ ७५॥

--प्रक्षेप्यम्। वायौ षोडशांशं पित्ते अष्टांशं कफे चतुर्थांशम्। शर्करायास्तु वायौ चतुर्थांशम् पित्ते अष्टमांशम्, कफे षोडशांशमिति विपरीतेति वचनसामर्थ्यात्॥
भाव टीकामें आगया है।

१ एतत्तु वचनं केवलक्षीरं पक्वपाचनादौ क्षीरं पंचमूल्याद्यामित्यर्थः। नान्यत्र; तैलघृतादिपाके तत्र द्रव्यान्तरमस्त्येव, केवलतैलादिपाके चतुर्गुणं क्षीरमेवास्ति न द्रव्यान्तरमस्ति, अत्र कण्ठोक्तत्वात् परिभाषा न प्रवर्त्तते। यथा 'अव्यक्तानुक्तलेशोक्तसन्दिग्धार्थप्रकाशिका' इत्यभिप्रेत्य व्याख्येयमिति गुरवः।

यह नियम केवल क्षीरमें पकेहुए पाचनादि (क्षीरपंचमूल्यादिक्वाथ) के लिये है, घृत तेल आदिके साथ दुग्धपाक करना हो तो वहांपर यह नियम ठीक नहीं है, क्योंकि केवल तेलादिके पाकमें चौगुना दूध ही होता है वो कोई दूसरे चीज थोडाही है। वहां परिभाषाने ऐसा ही विधान किया है इस कारण परिभाषा नहीं प्रवृत्त होती।

क्षीर मस्तु और आरनालमें जल डालनेका कारण।

क्षीरमस्त्वारनालानां पाको नास्ति विनाम्भसा।
सम्यक्पाकं न गच्छान्ति तस्मात्तोयं चतुर्गुणम् ७६

दूध, मस्तु और आरनाल कांजीका अच्छा पाक जलके विना नहीं होता, इस कारण अच्छा पाक करनेके लिये चौगुने जलके साथ पाक करे॥ ७६॥

इति वैद्यकपरिभाषाप्रदीपका द्वितीयखण्ड समाप्त।

अथ तृतीयखण्डः।

स्नेहके साधन क्वाथ्य और जलादिका परिमाण।

क्वाथ्याच्चतुर्गुणं वारि पादस्थं स्याच्चतुर्गुणात्।
स्नेहात्स्नेहसमं क्षीरं कल्कस्तु स्नेहपादिकः॥
चतुर्गुणन्त्वष्टगुणं द्रव्यं द्वैगुण्यतो भवेत्॥ १॥

काढेकी औषधियोंको चौगुने पानीमें डालकर औटालेमें, चौथाई पानी बाकी रह जानेपर छानले, फिर उस स्नेह (घृततेलादिक) के बराबर दूध और स्नेहके चतुर्थांश कल्कके साथ स्नेहपाक करे। ऊपर कहे हुए स्थलमें "चतुर्गुण" शब्दके स्थानमें आठ गुण जलदान करे क्योंकि द्रवद्रव्यको दूना लेना चाहिये॥ १॥

दूध लेनेके विषयमें विशेष विचार।

अत्र द्रवान्तरानुक्तौ क्षीरमेव चतुर्गुणम्।
द्रव्यान्तरेण योगे हि क्षीरं स्नेहसमं भवेत्॥ २॥

स्नेहपाक करनेमें और कोई द्रव (जलादि) पदार्थ न कहा हो तो स्नेहसे चौगुना दूध देकर पाक करे। जो कोई और द्रवद्रव्य कहदिया हो तो स्नेहके बराबर दुग्ध लेकर पाक करे ॥ २ ॥

दूसरेकी स्नेहकी रीति।

जलमष्टगुणं क्वाथ्यात्क्वाथश्च जलपादिकम् ।
क्वाथाच्च पादिकं स्नेहः स्नेहात्कल्कस्तु पादिकः॥३॥

अठगुने जलमें क्वाथ्यद्रव्य पकाकर जलके चौथाई रहजानेपर उतार छान ले, इसमें क्वाथसे चौथाई स्नेह और स्नेहसे चौथाई कल्क देकर स्नेह सिद्ध करे ॥ ३ ॥

पांचसे कम और पांचसे ज्यादा।

पंचप्रभृति यत्र स्युर्द्रवाणि स्नेहसंविधौ ।
तत्र स्नेहसमान्याहुरर्वाक्च स्याच्चतुर्गुणम् ॥ ४ ॥

जिस तेल घीके बनानेमें पांच या इससे भी अधिक द्रव द्रव्य हों तो प्रत्येक द्रव द्रव्य स्नेहकी बराबर लेना चाहिये। यदि पांचसे कम हों तो स्नेहसे चौगुने डालने चाहिये ॥ ४ ॥

---

१ अत्र स्नेहादेर्यत्र यशोधरटीकाव्याख्यामाह–अत्र मिलित्वैव चातुर्गुण्यं युक्तमेव, एकादिचतुर्द्रवपर्यन्तम् अत्रानुपपत्तिरेषा । द्रवचतुष्टयविषयेण चरितार्थमेव तद्वचनम् । तत्र द्रवचतुष्टयसमवतेति नैवञ्च क्षतिः, तस्मादेकेनापि चातुर्गुण्यामित्यादि चतुःसम-मित्यन्तयोः परिभाषया द्रवचतुष्टयविषये तावत् । यत्र स्नेहादेः पाकविधौ द्रवानि पञ्चप्रभृतिषट्सप्ताष्टाधिकतराणि च देयानि स्युः । तत्र स्नेहसमानानि देयानि। अर्वागिति पञ्चशब्दस्य अर्वाक् पंचमादित्यर्थः । तेन एकादि चतुःपर्यंतं द्रवाणां चातुर्गुण्यं स्नेहभागापेक्षया इति । एकद्वित्रिद्रवयोगेऽपि मिलित्वा चातुर्गुण्यम् । चतुर्षु द्रवेषु तु प्रत्येकं स्नेहस्य भागापेक्षया चातुर्गुण्यमित्येके वदन्ति । एतेन चतुर्णां चातुर्गुण्यम् । त्रयाणामपि द्वाभ्यामपि एकस्यापि चातुर्गुण्यम् । पंचापेक्षया एषामेकादिचतुर्णां प्रति चार्वाक्त्वमित्यभिप्रायः ॥

इसका श्लोकके अन्वयके योग्य भाव टीकामें कह दिया, निष्पत्ति इसमें है॥

एक दो या तीन द्रवोंके साथकी व्यवस्था।

एकद्वित्रिद्रवद्रव्यैः कुर्यात्स्नेहाच्चतुर्गुणम्।
क्षीरं स्नेहसमं देयं चतुर्भिश्च चतुर्गुणम् ॥ ५ ॥

एक, दो या तीन द्रवद्रव्योंके साथ स्नेहपाक करना हो तो प्रत्येक द्रव्यको स्नेहसे चौगुना लेना चाहिये, पर दूध स्नेहके बराबर ले और चार द्रवद्रव्योंसे पाक करना होतो उनके बराबर भागमें मिले हुए स्नेहसे चौगुना लेना योग्य है ॥ ५ ॥

कल्काच्चतुर्गुणं स्नेहः स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम्।
क्वाथ्याच्चतुर्गुणं वारि क्वाथ्यः क्वाथसमो भवेत् ॥६॥

कल्कसे चौगुना स्नेह, स्नेहसे चौगुना जल लेना चाहिये, जिसका क्वाथ करना हो उसके वजनसे चौगुना जल ले काढे करनेकी चीजें उतनी ही लेनी चाहिये (जितना क्वाथ स्नेहमें डालना हो) ॥ ६ ॥

जलस्नेह और औषधके अप्रमाणमें व्यवस्था।

जलस्नेहौषधानाञ्च प्रमाणं यत्र नेरितम्।
पादः स्यादौषधं स्नेहात्स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम् ॥ ७ ॥

जहां तेल, घी बनानेमें जल, स्नेह और औषधिका परिमाण न कहा हो तो वहां स्नेहकी चौथाई औषध और स्नेहसे चौगुना जल डाले ॥ ७ ॥

पुष्पके कल्कसे स्नेह सिद्धि।

वृषादिकुसुमात्कल्कः केवलः स्नेहसिद्धये।
यत्रोक्तः स्नेहपादार्द्धः स्नेहकार्ये मनीषिभिः ॥ ८ ॥

जिस स्नेहमें केवल अडूसे आदिके फूलका कल्क देनेकी विधि हो वहां यह कल्क स्नेहका आठवां भाग ग्रहण करना चाहिये ॥ ८ ॥

जल क्वाथ और स्वरससे स्नेहकी रीति ।

स्नेहे सिद्धयति शुद्धाम्बुनिःक्वाथस्वरसैः क्रमात्।
कल्कस्य योजयेदंशं चतुर्थं षष्ठमष्टमम् ॥ ९ ॥

अष्टाङ्गहृदयके कल्पस्थानमें लिखा हुवा है कि, शौनक कहते हैं कि, शुद्धजल अथवा क्वाथ और स्वरससे स्नेहपाक करनेकी विधि हो तो वहांपर क्रमानुसार स्नेहका चतुर्थांश, षष्ठांश और अष्टमांश कल्क रक्खै यानी केवल शुद्ध जलसे स्नेहको सिद्ध करना हो तो स्नेहसे चौथाई कल्क दे। क्वाथसे स्नेहपाक करना हो तो छठा अंश और स्वरससे स्नेहपाक करना हो तो स्नेहका आठवां हिस्सा कल्क डाले॥९॥

स्वरस दूध और दधिके पाकमें चौगुना पानी ।

स्वरसक्षीरमाङ्गल्यैः पाको यत्रेरितः क्वचित् ।
जलं चतुर्गुणं तत्र वीर्याधानार्थमावपेत् ॥ १० ॥
न मुञ्चति रसं द्रव्यं क्षीरादिभिरुपस्कृतम् ।
सम्यक्पाको न जायेत तस्मात्तोयं चतुर्गुणम् ॥११
(स्वरसक्षीरमाङ्गल्यैरत्रोपलक्षणे तृतीया)

---

१ विष्णुतैलपाके केवलं दुग्धचतुर्गुणः पाकस्तत्र वीर्याधानार्थं जलं चतुर्गुणं केचिदिच्छन्ति, तदसत्। नायं क्षीरपाकः किन्तु क्षीरचतुर्गुणे तैलस्य पाकः । नेदं तैलं द्रवप्रधानम्, "एतदङ्गधरं तैलम्"इति ग्रन्थान्तरे पाठात्। अङ्गधरं कल्कं प्रधानमित्यर्थः। अथवा पाको द्विविधः क्षीरस्य क्षीरकरणकः। क्षीरकर्म्मकः। अत्र पुनः क्षीरकरणकः पाकः। क्षीरकर्मकः क्षीरपाकः " द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम् " इति वचनात् अत्र चतुर्गुणं द्रव्यं विना सम्यक् पाको न स्यादित्यर्थः। यदा तु विष्णुतैले जलं चतुर्गुणं ददाति तदा द्रववाहुल्यदोषः स्यात्। चतुर्गुणदुग्धेनैव फलसिद्धेः। गुरवस्त्वाहुः—परिभाषा तु कंठोक्तं विना इति शेषः॥——

माङ्गल्य–दधि, स्वरस, दूध और दहीसे किसी स्थलमें पाक करनेकी विधि हो तो वहांपर चौगुना जल डालै, क्योंकि, केवल दही दूध आदिसे स्नेहका पाक भली भांति नहीं हो सकता। औषधिके वीर्यवान् होनेके लिये इनके स्नेहमें चौगुना जल डाले ॥ १० ॥ ११ ॥

अकेले दूधसे दूध परिमाण।

स्नेहपाकविधौ यत्र क्षीरमेकन्तु कथ्यते ।
तोयादीनामनिर्देशे क्षीरमेव चतुर्गुणम् ॥ १२ ॥
"एतदेव समाधानमत्युचितम्"।

जहांपर स्नेह पाकमें जलादिका देना नहीं लिखा केवल दूधका देना ही लिखा है वहां चौगुने दूधसे स्नेह पाक सिद्ध करे। यही समाधान उचित है ॥ १२ ॥

अकल्क स्नेहके सिद्ध करनेकी रीति।

अकल्कोऽपि भवेत्स्नेहो यः साध्यः केवले द्रवे॥१३॥

—विष्णुतलेका चौगुने दूधसे पाक करनेकी विधि है। वीर्यवन्त करनेके लिये कोई२ उसमें चौगुना जल डालनेकी विधि कहते हैं। परन्तु यह विधि ठीक नहीं है। क्योंकि, यह क्षीरपाक नहीं है, अतः चौगुने दूध करके तेलपाककी विधिके अनुसार पाक करना होगा। क्योंकि, उसे अंगधर तेल कहा है क्योंकि इसमें अंगधर कल्क प्रधान है। अथवा यों समझिये कि, क्षीरका पाक दो तरहका होता है, एक तो क्षीरसे तथा–दूसरा क्षीरका होता है, क्योंकि, "द्रव्यसे आठ गुना दूध तथा दूधसे चौगुना पानी यह वचन मिलता है। यहां चौगुने द्रवके विना पाक न हो सकेगा। विष्णुतैलका चौगुना जल देकर पाक किया जाता है, तोभी वह उपकारी नहीं होता, वरन द्रव्यकी बहुतायतके दोषसे अपकारी होजाता है क्योंकि चौगुने दूधसेही फल सिद्ध है। अतएव गुरुउपदेशके अनुसार जैसा प्रचलित है वैसाही पाक सिद्ध करे ॥

जिन स्नेहोंके पाक करनेकी विधि कल्कके विना केवल द्रवद्रव्यसे लिखी है उनको भी चौगुने जलसे ही सिद्ध करे॥ १३॥

विना कहे स्नेहः और कल्कका परिमाण।

स्नेहपाकविधौ यत्र प्रमाणं नेरितं क्वचित्।
स्नेहस्य कुडवं तत्र पचेत्कल्कपलेन तु॥ १४॥

जहां स्नेहका परिमाण न लिखा हो वहां पर एक कुडव स्नेह और एक पल कल्क लेकर स्नेह सिद्ध करे॥ १४॥

इसीपर चिकित्सक।

मानानुक्तौ घृते तैले प्रस्थमाहुश्चिकित्सकाः॥ १५॥

जहां घृत तेल आदिका परिमाण न लिखा हो, तो वहां चिकित्सक लोग एक प्रस्थ ग्रहण करते हैं॥ १५॥

हीनवीर्य्य होनेका कारण।

द्विगुणं त्रिगुणं वापि बहुमात्राच्च पादिकम्।
योगं यदि पचेन्मूढो हीनवीर्य्यं भवेत्तदा॥ १६॥

यदि अज्ञानता वश स्नेहके परिमाणसे, स्नेह दूना या तिगुना किया जाय. अथवा स्नेहकी अधिक मात्रा लिखी रहने परभी उसका चौथाई आदि अंश कम करके स्नेहादिक पाक कियाजाय तो वह हीनवीर्य होता है; अतएव घृत तेलका जितना वजन कहा हो, उतनाही पूरी मात्रासे तैयार करना चाहिये॥ १६॥

तुलासे द्रोण जल तथा द्रोणसे तुला द्रव्यका ग्रहण।

तुलाद्रव्ये जले द्रोणो द्रोणे द्रव्यतुला मता।

द्रव्य (औषधि) का परिमाण एक तुला कहा हो पर जलका परिमाण न कहा हो तो एक द्रोण जल प्रदान करे। यदि जल एक द्रोण कहा हो और द्रव्यका परिमाण न कहा हो तो द्रव्य (औषध) एक तुला ग्रहण करे ॥

अनुक्त द्रवमें जलका ग्रहण।

अनुक्ते द्रवकार्ये तु सर्वत्र सलिलं मतम् ॥ १७ ॥

जहां पर केवल द्रव मात्र कहा हो पर उसका नाम न लिखा हो तो वहांपर सब जगह जलही प्रदान करे ॥ १७ ॥

अनुक्तमें मूल, समभाग, जल और प्रात।

अङ्गेऽप्यनुक्ते विहितन्तु मूलं भागेऽप्यनुक्ते समता विधेया ॥ द्रवेऽप्यनुक्ते जलमेव देयं कालेऽप्यनुक्ते दिवसस्य पूर्वम् ॥ १८ ॥

द्रव्यका अंग न कहा हो तो मूल, भाग न कहा हो तो समानभाग एवम् द्रवद्रव्य न कहाहो तो जल ग्रहण करे, काल न कहा हो तो प्रातःकाल समझना चाहिये ॥ १८ ॥

अधिकोंका अलग अलग पाक।

प्रसारण्यादिनिर्दिष्टं शतमेकं पृथक्पृथक्।
जलद्रोणेन चैकैकं साधयेच्छ्लक्ष्णकुट्टितम् ॥ १९ ॥

क्वाथ्यद्रव्यस्य बाहुल्यादुदके स्वल्पमेव तु।
सम्यक् पाकं न जायेत हीनवीर्य्यन्तु केवलम् ॥ २० ॥

गन्धप्रसारणी (पसरन) आदि क्वाथ्यद्रव्योंका परिमाण अधिक हो तो उनको एक साथही न लेकर अलग अलग रूपसे एक शतपल द्रव्य ग्रहण कर भली भांतिसे कूटे और एक दोण जलसे पाक करे;

क्योंकि, क्वाथ्यद्रव्य परिमाणमें अधिक हो तो बडे पात्रके न मिलनेसे जिसके योग्यजल एक साथ नहीं दिया जाता। क्वाथ्यद्रव्यमें वारंवार जल देनेसे अथवा जलका परिमाण कम होनेसे भलीभांतिसे पाक न होनेपर औषधिका वीर्य नहीं निकल सकता इस कारण ये औषधें हीनवीर्यवाली हो जाती हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

कल्क और क्वाथको न कथनमें स्नेहके गण।

कल्कक्वाथावनिर्दिष्टौ गणात्तस्मात्समाहरेत्।
समस्तवर्गमर्द्धं वा यथालाभमथापि वा।
प्रयुञ्जीत भिषक्प्राज्ञः कालसात्म्यविभागवित् ॥२१

कल्क और क्वाथके द्रव्य न कहे हों तो वहांपर स्नेहमें कहे हुए गणके समस्त द्रव्य लाकर कल्क और क्वाथके योग्य परिमाणसे(पहले लिखा गया है) ग्रहण करे। गणमें कहे हुए समस्त द्रव्य, या आधे अथवा जहांतक मिले चतुर चिकित्सक काल और सात्म्यादिका विचार करके उनकाही प्रयोग करे ॥ २१ ॥

यत्राधिकरणे नोक्तिर्गणे स्यात्स्नेहसंविधौ।
तत्रैव कल्कनिर्यूहौ विध्येते स्नेहवेदिना ॥ २२ ॥

---

१ यत्रेत्यादि–अधिकारितया यत्र गणत्वमधिकृतं तत्रोभयकल्पना। यत्र तन्नास्ति तत्र कल्ककल्पनैव। अतश्चक्रपाणिकृतसंग्रहे पिप्पल्यादिघृते तेनैव परिभाषा लिखिता। तत्र निश्चलकरेण व्याख्यातम्। न चायं पिप्पल्यादिगणोऽधिकरणेन उक्त इति। अतः पिप्पल्यादेः कल्कसाध्यज्ञेयाः, न क्वाथकल्कं कुर्यादिति। अत्र चोक्तम्। "एतद्वाक्यबलादेव कल्कसाध्यं परं घृतम्" इति। यत्र स्नेहसाधने अधिकरणेन उक्तिः स्यात्तत्र गणे कल्कनिर्यूहौ साध्यौ। यत्र गणे अधिकरणेन उक्तिर्नास्ति तत्र कल्ककल्केनैव न क्वाथः कार्य इति॥—

इक्कीसवीं परिभाषामें जो कुछ कह दिया गया है उसीका यह विशेष विधान है कि, जहां स्नेह बनानेकी विधिमें गणका अधिकार-रूपसे कथन किया गया है वहीं स्नेह बनानेमें सुचतुर पुरुष कल्क और क्काथ चाहते हैं ॥ २२ ॥

योग्यका ग्रहण तथा अयोग्यका त्याग।

गणोक्तमपि[1] यद्द्रव्यं भवेद्व्याधावयौगिकम्।
तदुद्धरेद्यौगिकन्तु प्रक्षिपेद्यदकीर्तितम् ॥ २३ ॥

—जहां पर संग्रहकारोंने गणोंका वर्णन किया हो वहांपर कल्क और क्वाथ दोनों ग्रहण करे। जहां न कहा हो वहां स्नेहमें कही हुई औषधियोंका कल्क ग्रहण करे। महात्मा चक्रपाणिदत्तने अपने संगृहीत ग्रन्थमें पिप्पल्यादिघृतपर ऐसीही परिभाषा लिखी है। यहां निश्चलकरने कहा है कि,यह पिप्पल्यादि गण अधिकरणसे नहीं कहा गया इस कारण पिप्पल्यादिघृत पिप्पली आदिके कल्कसे सिद्ध होता है, क्काथ कल्क नहीं बनता—यही कारण है कि, चक्रदत्तने वहां लिखा है कि, " एतद्-वाक्यबलादेव कल्कसाध्यं परं घृतम् " यानी इसी वाक्य केवलसे घृतकल्क साध्य माना जाता है यानी स्नेह सिद्ध करनेके लिये अधिकार अर्थात् निश्चय कर दिया गया है वहीं कल्क और क्काथ सिद्ध किये जाते हैं। जिस गणमें अधिकरण-रूपसे कथन नहीं है वहां कल्कसेही कार्य्य करले, क्काथ न करना चाहिये ॥

१ यत्र व्याधौ ये गणाः सन्ति तत्रैव धात्वपेक्षया न विहितास्तत्र गणोक्ता अपि अयौगिकत्वाद्धेयाः धातुव्याध्यनुरूपं कीर्तितमपि यौगिकं प्रक्षिपेत्। यथा वायौ रूक्षशैत्यादि, तीक्ष्णकटुकादि पित्ते, कफे स्निग्धमधुरादि। एतत् सर्वं गणोक्तमपि न देयम्, वातादिषु यद्युक्तं तदेव देयम्। यदुक्तं लोहशास्त्रे पातञ्जलादिभिः " उचि-तमपि हेयमौषधमनुचितमुपादेयम् " इति संक्षेपः। उचितमप्रयौगिकं हेयम्, अनुचितं यौगिकमपि धात्वनुरूपमुपादेयं ग्राह्यमित्यर्थः ॥

वायुरोगमें रूखे और शीतल द्रव्यादि, पित्तसे उत्पन्न हुए रोगमें तीक्ष्ण और कटु रसादि और कफ रोगमें मधुर रसादि द्रव्य गणमें कहे भी हों तो भी

जिस रोगमें जिस औषधिके प्रयोग करनेकी विधि कही है, उसमें कोई औषध अवस्थाके कारण रोगके अयोग्य हो, तो उनको ग्रहण न करे। योगमें न कहा द्रव्य भी यदि व्याधिके निवारण करने योग्य हो, तो बुद्धिमान् चिकित्सक विचार करके उसका प्रयोग कर ले ॥ २३ ॥

शार्ङ्गधरकी स्नेह पाककी रीति।

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्य घृतं वा तैलमेव वा ।
चतुर्गुणे द्रवे साध्यं तस्य मात्रा पलोन्मिता ॥ २४॥
"पलोन्मितेति पानादौ मात्रा देया निष्पन्नस्य घृतादेः"

शार्ङ्गधरजी कहते हैं कि, चौगुना घी वा तैल हो उससे चौगुने द्रवद्रव्यसे पाक कर ले । पानादिमें इसकी एक पल मात्राका प्रयोग करे ॥ २४ ॥

निक्षिप्य क्वाथयेत्तोयं क्वाथद्रव्याच्चतुर्गुणम् ।
पादशेषं गृहीत्वा तु स्नेहं तेनैव साधयेत् ॥ २५ ॥

क्वाथ द्रव्यमें चौगुना जल डालकर पकावे। चौथाई रहजाय तो उतारकर छान ले । उससे स्नेहादि पाक करने चाहिये ॥ २५ ॥

पाकका समय ।

क्षीरे द्विरात्रं स्वरसे त्रिरात्रं तक्रारनालादिषु पञ्चरात्रम् । स्नेहं पचेद्वैद्यवरः प्रयत्नादित्याहुरेके भिषजः प्रवीणाः ॥ २६ ॥

—प्रयोग न करे । वातादि रोगमें जैसे द्रव्य प्रयोगकी विधि है अर्थात् वातरोगमें स्निग्ध और मधुरद्रव्यादि, पित्तरोगमें कटु और मधुरद्रव्यादि और कफरोगमें तीखे-द्रव्यादि योगमें न कहे हुए हों तो भी प्रयोग करे। चिकित्सकको चाहिये कि, धातुके अनुरूप औषधिकी कल्पना कर ले ॥

वृद्धचिकित्सक लोग कहते हैं कि, दूधमें दो रातमें, स्वरसमें तीन रातमें, तक्र (घोल) और आरनाल (कांजी) आदिमें पांच रात्रिमें स्नेहका पाक होता है ॥ २६ ॥

द्वादशाहन्तु मूलानां वल्लीनां क्रममेव च ।
एकाहं व्रीहिमांसानां पाकं कुर्याद्विचक्षणः ॥ २७ ॥

चतुर वैद्यलोग मूल और लतादिका पाक १२ दिनमें और मांसादिका पाक एक दिनमें तैयार करते हैं ॥ २७ ॥

मृदु काठिन्य भेदसे जल ।

चतुर्गुणं मृदुद्रव्ये कठिनेऽष्टगुणं जलम् ।
तथा च मध्यमे द्रव्ये दद्यादष्टगुणं पयः ॥
अत्यन्तकठिने द्रव्ये नीरं षोडशिकं मतम् ॥२८ ॥

मृदुद्रव्योंका चौगुने जलमें, कठिनद्रव्योंका आठगुने जलमें काढा करे। मृदु और कठिन इन दोनोंके बीचका द्रव्य अर्थात् जो न तो अत्यन्त मृदु हो न अत्यन्त कठिन हो उनका काढा आठगुने जलमें करे। अत्यन्ते कठिन द्रव्योंका १६ गुने पानीमें काढा करे॥ २८ ॥

औषधिकी तोलके भेदसे जल ।

कर्षादितः पलं यावत्क्षिपेत्षोडशिकं जलम् ।
तदूर्ध्वं कुडवं यावद्भवेदष्टगुणं पयः ॥
प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरं खारी यावच्चतुर्गुणम् ॥२९ ॥

एक कर्षसे एक पल तक औषधिका १६ गुने जलमें और उससे ऊपर कुडव तक औषधिका आठ गुने जलसे काढा करे एवं प्रस्थसे लेकर खारी तकके औषधिका काढा करना हो तो चौगुना पानीमें करे ॥ २९ ॥

जलादिके भेदसे कल्क ।

अम्बुक्वाथरसैर्यत्र[1] पृथक्स्नेहस्य साधनम् ।
कल्कस्यांशं तत्र दद्याच्चतुर्थं षष्ठमष्टमम् ॥ ३० ॥

जलसे स्नेह सिद्ध करना हो तो स्नेहका चौथाई कल्क तथा काढेसे स्नेह सिद्ध करना हो तो स्नेहका छठा हिस्सा कल्क दे एवम् स्वरस या मांस रसमें स्नेह करना हो तो स्नेहका आठवां हिस्सा कल्क डाले ३०

दुग्धादिसे सिद्धकरनेमें कल्क और जल ।

दुग्धे[2] दध्नि रसे तक्रे कल्को देयोऽष्टमांशिकः ।
कल्कस्य सम्यक्पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम् ॥३१॥

दूध, दही, रस और मट्ठेसे स्नेह सिद्ध करना हो तो स्नेहका आठवां भाग कल्क दे। कल्कका पाक भली भांति होजाय, इसलिये चौगुना जल डालै। वृद्धवैद्योंका भी यही मत है ॥ ३१ ॥

पांच तथा पांचसे कम ज्यादा ।

द्रवाणि यत्र स्नेहेषु पंचादीनि[3] भवन्ति हि ।
तत्र स्नेहसमान्याहुर्यथापूर्वं चतुर्गुणम् ॥ ३२ ॥

---

१ केवलजलसिद्धे स्नेहमात्रे कल्कस्य चतुर्थांशं स्नेहापेक्षया देयम्, एवं क्रमात् केवलन्तु क्वाथसिद्धे कल्कस्य षडंशं देयम् । रसैरिति स्वरसैः सिद्धे कल्कस्याष्टांशं देयमित्यर्थः । (इसका भाव हिन्दी टीकामें आगया)

२ केवलदुग्धसिद्धे तैलादौ स्नेहादष्टांशिकः कल्कः कार्यः । एवं दधिरस इति स्वरूपे । तक्र इति पारिभाषिकतक्रे । सर्वत्राष्टांशिकः कल्को देयः । एतेषां घनत्वेन कदाचित् सम्यक् पाकाऽभावत्वात् सर्वस्मिन्नपि चतुर्गुणं जलं दापयन्ति वृद्धाः ॥ (इसका भाव टीकामें आगया)

३ पंचादीनीति पंचषट्सप्ताष्टकानि तदातिरिक्तान्यपि यत्र स्नेहे द्रवाणि देयानि स्युः तत्रेमानि स्नेहतुल्यानि भवन्ति । यथापूर्वमिति प्रतिलोमरीत्या पूर्वं पूर्वं चतुः-

स्नेहके सिद्ध करनेमें यदि पांच या इससे भी अधिक द्रवपदार्थ कहें हों तो हरएक द्रवद्रव्यको स्नेहकी बराबर ग्रहण करे। एकसे चारतक द्रव पदार्थोंसे स्नेह सिद्ध करना कहा हो तो प्रत्येकको स्नेहसे चौगुना ले। इसपर कोई कोई कहते हैं कि, एकसे चारतक द्रवद्रव्योंसे पाक करना कहा हो तो चाहें चार तीन और दो हो वे सब मिलकर स्नेहसे चौगुने होंगे, चाहें एक हो वो भी चौगुना होगा ३२

अकेले द्रवसे स्नेह।

द्रवेण केवलेनैव स्नेहपाको भवेद्यदि।
तत्राम्बुपिष्टः कल्कः स्याज्जलं चात्र चतुर्गुणम् ॥३३

-प्रभृत्येकपर्यन्तं प्रत्येकं स्नेहाच्चतुर्गुणं द्रवं देयमिति केचिदाहुः। अन्ये तु एकादिचतुः-पर्यन्तम् मिलित्वा चतुर्गुणं ददते तेनैकस्यापि चातुर्गुण्यं द्वाभ्यामपि त्रयाणामपि चतुर्णामपि चातुर्गुण्यमिति। (इसका भाव भी टीकामें आगया)

यथा महेश्वरचक्रशेषटीकायाम्-

गुडूचीतैले गुडूचीक्वाथं द्वादशशरावं दुग्धशरावं चतुष्टयं मिलित्वा षोडशशरावं टीकायां लिखति। एवं द्राक्षारसेऽपि षोडशशरावं दत्त्वा एकस्य द्रव्यस्य चतुर्गुणं लिखति। एवं यष्टिमधुगाम्भारीफलयोर्मिलितयोश्चतुः षष्टिशरावे पानीये पक्त्वा शिष्ट-षोडशशरावं दत्त्वा तैलत्रयं पचति। यथा "गुडूचीक्वाथदुग्धाभ्यां तैलं लाक्षा-रसेन वा। सिद्धं मधुककाश्मर्या रसेन वातरक्तनुत्" इति॥

महेश्वर चक्रशेष टीकामें लिखा है कि, गुडची तेलमें गुडूची क्वाथ १२ शराव और ४ शराव दूध मिलकर १६ शराव होता है, इसी प्रकार द्राक्षा रसमें भी १६ शराव देकर एक द्रव्यको चौगुना लिखता है। इसी प्रकार मुरहली और खंभारी दोनोंके फलोंको ६४ शराव पानीमें पका बाकी १६ शराव देकर तीन तेल बनाते हैं। लिखा भी है कि-' गुडूचीके क्वाथ और दूधसे, लाखके रससे, मधुक और खंभारीके रससे स्नेह सिद्ध होनेपर वातरक्तको जीतता है '॥

जहां केवल एकही द्रवद्रव्यसे स्नेह सिद्ध करना हो, वहां कल्कके द्रव्यको जलमें पीसकर कल्क बना स्नेहसे चौगुने जलसे स्नेह तैयार करे॥

केवल काथसे पाक।

काथेन केवलेनैव पाको यत्रेरितः क्वचित्।
क्वथ्यद्रव्यस्य कल्कोऽपि तत्र स्नेहे प्रयुज्यते ॥३४॥

केवल काथसे ही स्नेह सिद्ध करना कहा हो, तो जिसका काढा कहा हो उस द्रव्यका कल्क कर स्नेहमें मिला स्नेहसे चौगुना पानी डालकर पहिलेकी तरह औटा ले ॥ ३४ ॥

कल्कहीन स्नेह।

कल्कहीनस्तु यः स्नेहः स साध्यः केवले द्रवे॥३५।

कल्कके विनाही जिस स्नेहके सिद्ध करनेका विधि हो वो केवल द्रवद्रव्यसे ही सिद्ध किया जाता है ॥ ३९ ॥

✓ फूलोंके कल्कका स्नेह।

पुष्पकल्कस्तु यः स्नेहस्तत्र तोयं चतुर्गुणम् ।
स्नेहो स्नेहाष्टमांशश्च पुष्पकल्कः प्रयुज्यते ॥ ३६॥

यदि फूलोंके कल्कसे स्नेहकी सिद्धि कही हो, स्नेहका आठवां हिस्सा फूलोंका कल्क होना चाहिये तथा स्नेहका चौगुना पानी होना चाहिये ॥ ३६ ॥

स्नेहके सिद्ध होनेके लक्षण।

स्नेहकल्को यदांगुल्या वर्त्तितो वर्त्तिवद्भवेत्।
वह्नौ क्षिप्ते च नो शब्दस्तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत्३७

चक्रदत्तमें लिखा है कि, जब स्नेहका कल्क अंगुलियोंसे वटने पर बत्तीके समान होजाय, एवम् अग्निमें डालनेपर किसी प्रकारका शब्द न करे, तब जानलो कि, स्नेहादिका पाक पूरा होगया ॥ ३७ ॥

क्षिप्ते कृशानौ न करोति शब्दं नाङ्गुष्ठलेपी विशदोऽपि नास्ति। संवर्तितो वर्तिमुपैति कल्को निष्पत्तिरेषा घृततैलयोस्तु ॥ ३८ ॥

स्नेहका कल्क अग्निमें डालने पर शब्द न करे और अंगुलीमें लेप करने पर उंगलीमें न लगे। यदि बटे तो बत्तीके समान होजाय तो समझ लेना कि, घृत और तेल तैयार होगया ॥ ३८ ॥

शब्दस्योपरमे प्राप्ते फेनस्योपरमे तथा।
गन्धवर्णरसादीनां सम्पत्तौ सिद्धिमादिशेत्।
घृतस्यैवं विपक्वस्य जानियात्श लोभिषक् ॥
फेनोऽतिमात्रं तैलस्य शेषं घृतवदादिशेत ॥ ३९ ॥

चक्रदत्तने स्नेह परीक्षामें लिखा है कि, जिस समय न तो अग्निमें छोड़नेसे शब्द हो, एवं न स्नेहमें शब्द हो, फेन शान्त होगया हो तथा गन्ध वर्ण और रस उत्तम होगये हैं या औषधियोंके स्नेहमें आगये हैं तो, समझ ले कि, घी सिद्ध होगया। इसी प्रकार तेलकी सिद्धि जानना चाहिये, पर तेलमें फेन अधिक उठते हैं बाकी सब लक्षण घृतके ही हैं॥

क्षारसे सिद्ध हुएकी पहिचान।

अस्मिन्नवसरे तोये क्षारसाध्यं घृतादिषु ॥ ४० ॥
फेनोदयस्य निष्पत्तिर्नष्टदुग्धसमाकृतिः।
स एव तस्य पाकस्य कालो नेतरलक्षणम् ॥ ४१॥

जो क्षारसे घृतादिका पाक करना हो तो पाक तैयार होनेके समय नष्ट दूधके झागकी समान झाग उठते हैं, अतएव तभी पाकको तैयार हुआ जानकर नीचे उतार ले ॥ ४० ॥ ४१ ॥

स्नेह पाकके भेद और उनके गुण अवगुण ।

स्नेहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा ।
ईषत्सरसकल्कस्तु स्नेहपाको मृदुर्भवेत् ॥ ४२ ॥
मध्यपाकस्य सिद्धिश्च कल्के नीरसकोमले ।
ईषत्कठिनकल्कस्य स्नेहपाको भवेत्खरः ॥ ४३ ॥
तदूर्द्ध्वं खरपाकः स्याद्दाहकृन्निष्प्रयोजनः ।
आमपाकश्च निर्वीर्यो वह्निमान्द्यकरो गुरुः ॥ ४४ ॥

मृदु, मध्य और खर ये तीन प्रकारका स्नेहका पाक होता है, जिसमें कल्क कुछेक सरस बना रहे उसे मृदुपाक कहते हैं । जिसका कल्क नीरस पर कोमल बना रहे उसे मध्यपाक कहते हैं । जिसका कल्क कुछ एक कठिन रहे उसे खरपाक कहते हैं । इस खरपाकसेभी अधिक कडा पाक हो तो वह दाहजनक एवं निकम्मा होजाता है। आमपाक यानी स्नेहमें जल हो तो वह वीर्यहीन मन्दाग्निका करनेवाला एवम् भारी होता है ॥ ४२–४४ ॥

मृदु मध्य और खरका प्रयोग ।

नस्यार्थं स्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्मसु ।
अभ्यङ्गार्थं खरः प्रोक्तो युञ्ज्यादेवं यथोचितम् ॥ ४५ ॥

मृदुपाक स्नेह नास लेनेमें, मध्यपाकका स्नेह सब क्रियाओंमें और खरपाकका स्नेह मर्दनके काममें आता है ॥ ४५ ॥

मृदुर्नस्ये खरोऽभ्यङ्गे वस्तौ पाने च मध्यमः ॥ ४६ ॥

मृदुपाकका स्नेह नास लेनेमें, खरपाकका स्नेह मलनेमें और मध्यपाकका स्नेह, वस्ती यानी पिचकारी देनेमें और पीनेमें युक्त होता है ॥ ४६

मृदु मध्य और खरकी पहिचान।

तुल्ये कल्के च निर्यासे भेषजानां मृदुः स्मृतः।
संयाव इव निर्यासो मध्यो दर्वीं विमुञ्चति।
शीर्यमाणे तु निर्यासे वध्यमाने खरः स्मृतः ॥४७॥

जिस स्नेहका कल्क हत्तेमें चिपक जाय उसको मृदुपाक, जिसका कल्क पिट्ठीके समान मालूम होकर हत्तेसे अलग होजाय उसे मध्य-पाक और जो घातनादिसे कठिन जाना जाय उसे खरपाक कहते हैं॥ ४७॥

श्रेष्ठ तथा बुरा।

सर्वेषामिह द्रव्याणां मध्यपाकः प्रशस्यते।
वरं पाको मृदुः कार्यस्तथापि न खरो मतः॥
किंचिद्वीर्यं मृदुर्धत्ते तज्जहाति खरः पुनः ॥४८॥

सब द्रव्योंका मध्य पाकही उत्तम है, मृदुपाकद्रव्य अल्पवीर्ययुक्त है पर खरपाकयुक्त द्रव्य तो कोई भी फल नहीं देता इस कारण खर पाकसे मृदुही उत्तम है; मृदुपाक तो किया जासकता है, पर खरपाक करना कभी भी उचित नहीं है. क्योंकि, वह दाहक और निष्प्रयोजन होजाता है॥ ४८॥

शार्ङ्गधरके स्नेहपाकके लक्षण।

वर्त्तिवत्स्नेहकल्कः स्यादंगुल्या च विवर्त्तितः।
शब्दहीनोऽग्निनिक्षिप्तः स्नेहासिद्धो भवेत्तदा ॥४९॥

स्नेहका कल्क ऊंगलियोंमेंसे वटने पर वत्तीके समान हो उसको अग्निमें डालनेसे किसी प्रकारका शब्द न हो, तबही स्नेहादिका पाक सिद्ध हुआ समझना चाहिये॥ ४९॥

यदा फेनोद्गमस्तैले फेनहीनस्तु सर्पिषि।
वर्णगन्धरसोत्पत्तौ स्नेहसिद्धिस्तदा भवेत् ॥ ५० ॥

जब तेलमें बहुतायतसे झाग उटने लगे और घृत फेनरहित होजाय और स्नेहमें जो वस्तु दीजाती है, उनके रंग गन्ध और रसकी यथायोग्य रूपसे उत्पत्ति हो तबही स्नेहका पाक सिद्ध हुआ जानना चाहिये ॥ ५० ॥

देरसे तयार करनेमें गुण।

घृततैलगुडादींश्च साधयेन्नैकवासरे।
कुर्वन्ति व्युषितास्त्वेते विशेषाद्गुणसञ्चयम्॥५१॥

घी, तेल और गुडादिके पाक एक दिनमें पूरे न करने चाहियें क्योंकि, ये बासी करके पाक करनेपर अत्यन्त फलदायक होते हैं इस कारण एक दिनमें सिद्ध न करे कई दिनमें पूरा करे ॥ ५१ ॥

अन्यच्च-

घृततैलगुडादींश्च नैकाहादवतारयेत्।
व्युषितास्तु प्रकुर्वन्ति विशेषेण गुणान्यतः ॥५२॥

चक्रदत्तमें भी लिखा है कि, एक दिनमेंही घी, तेल और गुडादिका पाक तैयार नहीं करे, क्योंकि, बासी करके पाक करनेसे अधिक फल होता है ॥ ५२ ॥

बासी अहितकारी क्काथ।

केवलं व्रीहिजन्त्वङ्गक्वाथो व्युष्टस्तु दोषलः ॥

केवल धान्यादि और प्राणियोंके मांसका क्काथ बासी करनेसे दोषकारी हो जाता है ॥

गुडपाककी पाहिचान।

यदा दर्वीप्रलेपः स्याद्यदा वा तन्तुली भवेत् ।
तोयपूर्णे च पात्रे तु क्षिप्तो न प्लवते गुडः ॥ ५३ ॥
क्षिप्तस्तु निश्चलस्तिष्ठेत्पातितस्तु न शीर्यति ।
एष पाको गुडादीनां सर्वेषां परिकीर्त्तितः ॥ ५४ ॥

जब हत्तेसे चिपट जाय और सूतकी समान छोटे छोटे तार निकलें (अर्थात् हत्तेके द्वारा ऊपरको उठानेपर सूतकी समान तार निकलें), जल भरे बर्त्तनमें डालनेपर निश्चल रहै न फैले, तबही गुडादिके पाकको सिद्ध हुआ जानना चाहिये ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

सुखमर्दः सुखस्पर्शो गन्धवर्णरसान्वितः ।
पीडितो भजते मुद्रां गुडपाकमुपागतः ॥ ५५ ॥

मलने और छूनेसे चिकना मालूम हो, भलीभांति गन्ध, वर्ण और रस गुडमें जाना जाय, हाथसे मलनेपर जब मुद्राके समान होजाय तब गुडका पाक सम्पन्न हुआ जाने ॥ ५५ ॥

गूगल पाक।

गुडवद्गुग्गुलोः पाको रसगन्धविशेषतः ॥ ५६ ॥

गूगलका पाकभी गुडके पाकके समान ही है, गुड और गूगलमें रस व गन्धकी अलगताके सिवा और कुछ भेद नहीं है ॥ ५६ ॥

गूगल पाककी मात्रा।

श्रेष्ठमध्यमहीनेषु द्वादशाङ्कचतुष्टयैः ।
माषकैर्गुग्गुलोर्मात्रां व्याधिं वीक्ष्य प्रयोजयेत्॥५७॥

प्रबल अग्निवालेके लिये गूगलकी मात्रा १२ माषा, मध्यम अग्निवालेके लिये आठ माषा (२ तोला), हीन अग्निवालोंके लिये चार माषेकी मात्रा है बलाबल विचारकर मात्राका प्रयोग करे ॥ ५७ ॥

लोहशोधनादिपरिभाषा ।

त्रिफलासे शुद्धि ।

यदाहुस्त्रिविक्रमपादा लोहप्रदीपे–

शुद्ध्यर्थं त्रिफला लोहात्कर्तव्या द्विगुणा सदा ।
चतुर्गुणं फलात्तोयमर्द्धभागावशोषितम् ॥
एष एव विधिर्नित्यं क्षालनेऽपि प्रशस्यते ॥ ५८ ॥

लोह प्रदीपमें श्रीत्रिविक्रम पाद कहते हैं कि–लोहेको शुद्ध करनेके लिये लोहके वजनसे दूना त्रिफला ग्रहण करके चौगुने जलमें पकावै, आधा रहनेपर उतारले । यही लोहशोधनेकी विधि है, लोहके क्षालनमें भी यही श्रेष्ठ है ॥ ५८ ॥

R

लोह मारणमें त्रिफलाकाथ ।

वधार्थं त्रिफला ग्राह्या लोहान्नित्यं चतुर्गुणा ।
तोयमष्टगुणं तत्र चतुर्भागावशोषितम् ॥ ५९ ॥

लोहेको मारना हो तो लोहेसे चौगुना त्रिफला ग्रहण करके आठ गुने जलमें पका चौथाई रह जानेपर उतार ले ॥ ५९ ॥

R

भानुपाकमें त्रिफला ।

भानुपाकार्थमिच्छन्ति त्रिफलामयसा समाम् ।
सलिलं द्विगुणं तत्र चतुर्भागावशोषितम् ॥ ६० ॥

भानुपाकके लिये लोहेकी बराबर त्रिफला ग्रहण करके उसे दूने जलमें पकावे, चौथाई रह जानेपर उतार ले ॥ ६० ॥

R.

स्थालीपाकमें त्रिफलाकाथ ।

पाच्यद्रव्यात्तु पाकार्थं त्रिफला त्रिगुणेरिता ।
स्यात्षोडशगुणं तोयमष्टभागावशेषितम् ॥ ६१ ॥

लोहेके स्थालीपाकमें त्रिफलाका उपयोग करना हो तो लोहेसे तिगुना त्रिफला लेकर १६ गुने जलके साथ पकावे, जब आठवां अंश रहजाय तो उतार ले ॥ ६१ ॥

लोहके पुटपाकादिकोंमें अन्य वस्तु तथा जल ।

अन्यानि यानि वस्तूनि योक्तव्यानि पुटादिषु ।
तानि लोहसमान्याहुर्जलं प्रागेव कीर्त्तितम् ॥ ६२॥

लोहेके पुटादिमें जो और वस्तुएँ दीजाती हैं उनको लोहेके वजनके बराबरही ग्रहण करे; जलका परिमाण पहले कहदिया गया है ॥ ६२ ॥

त्रिफलासे भिन्न स्वरस होनेपर क्वाथका अप्रयोग ।

लभ्यते स्वरसो येषां तेषां क्वाथोऽत्र नेष्यते ।
त्रिफलाव्यतिरेकेण मतमेतत्पतञ्जलेः ॥ ६३ ॥

पतंजलिका मत है कि, त्रिफलाको छोड़कर जिन द्रव्योंका स्वरस मिलता है, उनका क्वाथ ग्रहण न करे; परन्तु त्रिफलाका स्वरस ग्रहण करना ठीक नहीं, उसका तो क्वाथही करना ठीक है ॥ ६३ ॥

इसी विधिकी क्षालनमें उपयोगिता ।

एष एव विधिर्नित्यं क्षालनेऽपि प्रशस्यते ॥ ६४ ॥

प्रतिदिन लोहेके क्षालनमें भी ऐसाही नियम श्रेष्ठ है ॥ ६४ ॥

लोहके वजनके अनुसार त्रिफलादिकी व्यवस्था ।

लोहवत् त्रिफला व्योम्नि त्रिफलावत्पयो मतम् ।
प्राक्कीर्त्तितं जलञ्चात्र मृदुमध्यादिभेदतः ॥ ६५ ॥

भानुपाकमें लोहेके वजनके अनुसार त्रिफला और त्रिफलाके वजनके अनुसार जल डाले । मृदु, मध्य और कठिनके भेदसे जलका परिमाण पहलेही कहागया है ॥ ६५ ॥

काथ्य द्रव्यके अनुसार जल।

मृदुमध्यकठोरत्वात्काथ्यद्रव्यं त्रिधा मतम्।
काथ्यद्रव्यानुसारेण देयं स्थाप्यं जलं त्रिधा॥६६॥

मृदु, मध्य और कठिनके भेदसे काथके द्रव्य तीन तरहके हैं। उन्हीके अनुसार जलका परिमाण भी तीन प्रकारका है॥ ६६॥

पतंजालिके मतसे लोहमारणमें त्रिफलाकाथ।

(सामान्यपरिभाषाणां लौहपारमार्थ्यम्)।
द्विगुणां त्रिफलां लोहात्पचेत्षोडाशिके जले।
अष्टभागावशिष्टन्तु मारणे जलमिष्यते॥ ६७॥

पतंजलिजी कहते हैं कि–लोहेके वजनसे दूना त्रिफला ग्रहण करके १६ गुने जलमें त्रिफलाको पकावे, आठवां हिस्सा बचजानेपर उतारकर लोहेके मारनेके लिये उसका प्रयोग करे। ये सामान्य परिभाषा लोहकेही लिये हैं॥ ६७॥

इसीपर दूसरोंके मतमें त्रिफला काथ।

समा च त्रिफला ग्राह्या जलं चाष्टगुणं तथा।
वधार्थे स्थापयेत्तोयं तस्यार्द्धं वस्त्रशोधितम्॥६८॥

लोहेको मारनेके लिये लोहेके वजनके बराबर त्रिफला ग्रहण करके अठगुने जलमें पाक करे आधा जल रहजानेपर उतारकर कपडेसे छानले॥ ६८॥

पाकके लिये काथ।

वधार्थेन समं ग्राह्यं पाकार्थञ्च समं फलम्।
अष्टभागावशिष्टं च पाकार्थं जलमिष्यते॥
एवं जलं फलं प्रोक्तं यथासंख्येन योजयेत्॥ ६९॥

लोहेको मारनेके लिये और पाकके लिये लोहेके बराबरही त्रिफला ले। पाकके लिये क्वाथ हो तो आठवां भाग जल रह जानेपर उतारले। इस प्रकारके विधानसे जल और त्रिफलाका क्रमानुसार प्रयोग करे॥ ६९॥

अथ लोहपाकके लक्षण।

पतंजलि-

तावल्लौहं पचद्वैद्यो यावद्वस्त्रेण गालितम्।
समुद्रं जायते व्यक्तं न निःसरति सन्धिभिः॥७०॥

पतंजलिजीने कहा है—कपडेसे छाननेपर लोहा समस्त वस्त्रको ढककर कपडेमें लगा रहै। नीचे (वस्त्रके बाहर) न गिरे तो जाने कि पाक सिद्ध नहीं हुआ अर्थात् जबतक ये बातें दूर न हो जायँ तबतक लोहपाक करे॥ ७०॥

अन्यच्च-

अंगुलिभ्यां दृढं घृष्टं यदा चूर्णत्वमागतम्।
तदा सिद्धं विजानीयाल्लौहं लोहविदां वरः॥७१॥

दूसरोंका भी मत है कि, अंगुलियोंसे जोरसे मसलनेपर चूर्ण होजाय तो चतुरवैद्य लोहेके पाकको सिद्ध हुआ जाने॥ ७१॥

अञ्जनाभं घनं स्निग्धं श्लक्ष्णभूतमलेपनम्।
अक्लिन्नमम्भसि क्षिप्तं सम्यक्पक्वस्य लक्षणम्॥७२॥

अञ्जनके समान कान्तिवाला, गाढा, चिकना, श्लक्ष्ण (महीन-चूर्ण) और ऊँगलीमें कुछेक लगजाय, जलमें डालनेसे तत्काल

कीचडके समान न हो किन्तु ऊपर तैरता रहे तो लोहेके पाकको सिद्ध हुआ जाने ॥ ७२ ॥

हीनलोहपाक ।

मन्दमाहुरथो लोहमलब्धाखिललक्षणम् ॥ ७३ ॥

पहले कहे हुए सब लक्षण लोहेमें न हो तो उसे हीनपाक जानें७३

अतिपाकके दोष ।

अतिपाकेन तज्ज्ञेयं खरमुज्झितलक्षणम् ॥ ७४ ॥

अत्यन्त पाक होनेपर पहले कहेहुए समस्त लक्षणोंको लांघकर लोहा खरभावको प्राप्त होजाता हैं ऐसा दीखे तो अतिपाक जाने७४॥

तीनों दोषोंपर तीनों पाकोंका प्रयोग ।

पाकस्तु त्रिविधः प्रोक्तो मृदुमध्यमतीक्ष्णकः ।
त्रैविध्यात्सर्वधातूनां पित्तानिलकफात्मनाम् ॥७५॥

अमोघतंत्रमें कहा है कि, पित्त, वायु और कफपर प्रयोगके भेदसे सब प्रकारकी धातुओंका पाक तीन प्रकारका है । उसके मृदु मध्य और खर ये तीन भेद हैं ॥ ७५ ॥

दर्वीमाश्लिष्यते यत्तत् स्वैरं स्खलति वा न वा ।
मृदुपाकं विजानीयात्पित्ते तद्वीक्ष्य योजयेत् ॥७६॥

जो लोहा हत्तेमें लगजाय, कभी खसके, कभी नहीं खसके उसे मृदु-पाक कहते हैं । बुद्धिमान् वैद्य विचारके साथ इसको पित्तके कोपमें प्रयोग करे ॥ ७६ ॥

सिक्तापुञ्जोपमं यत्तु मूषिकेन समन्वितम् ।
तदयः खरपाकः स्याच्छ्लेष्मण्येव प्रकीर्त्तितः ॥ ७७ ॥

जो लोहा पाकके वर्त्तनमें चिपटकर रेतीली भूमिके समान कठिन भाव धारण करे तो इसे खरपाक कहते हैं। श्लेष्माके कोपमें इसका प्रयोग किया जा सकता है ॥ ७७ ॥

सर्वत्रोपयोगी मध्यपाक।

एकैकगुणयोगित्वान्न तादिच्छन्ति तद्विदः।
सर्वप्रकृतिसेव्यत्वान्मध्यमं बहुपूजितम्।
गुडादि प्रविशेद्यत्र तत्र पाकोऽस्य मुद्रया ॥ ७८ ॥

एक एक प्रकारके पाकमें एक एक गुणके दिखाई देनेसे चतुर वैद्यगण इसे प्रशंसाके योग्य नहीं समझते। मध्य पाकके लोहेको सब स्वभाववाले सेवन करसकते हैं, यह अत्यन्त उपकारी है। गुडके साथ जिस लोहेका पाक किया जाय वह मलनेसे मुद्राकी समान हो तो पाकको तैयार हुआ जाने ॥ ७८ ॥

भावनाविधि।

द्रवेण यावता द्रव्यमेकीभूयार्द्रतां व्रजेत्।
तावत्प्रमाणं कर्त्तव्यं भिषग्भिर्भावनाविधौ[1] ॥ ७९ ॥

चिन्तनीय द्रव्य (चूर्ण) जिस द्रवद्रव्यकी भावना दी गई है उसमें तर होजाय उतनीही भावना देनी चाहिये यानी उतनाही डालना चाहिये। भावित द्रव्य जब तक एक न होजाय तब तक घोटना चाहिये॥७९॥

दिवा दिवातपे शुष्कं रात्रौ रात्रौ च वासयेत्।
श्लक्ष्णं चूर्णीकृतं द्रव्यं सप्ताहं भावनाविधिः ॥८०॥

---

१ अत्र जलं पाकार्थमष्टगुणं देयं ग्रन्थान्तरदर्शनात्। "भाव्यद्रव्यसमं क्वाथ्यं क्वाथ्यादष्टगुणं जलम्" इति पश्चाल्लिखितमेव। केचित्तु अनुक्तजलपरिमाणे चतुर्गुणं जलं दत्त्वा द्रव्यत्वादिविदस्त्वष्टांशशेषं गृह्णन्ति ॥

चिन्तनीय द्रव्यको भावना देकर दिनमें धूपमें सुखावे, रात्रिमें वासीकरे और उसके दूसरे दिन सूक्ष्मचूर्ण करके फिर भावना दे । इसी प्रकार एक सप्ताहतक भावना देना चाहिये ॥ ८० ॥

मतान्तरमें भावना ।

भावद्रव्यसमं क्वाथ्यं क्वाथ्यादष्टगुणं जलम् ।
अष्टांशशेषितः क्वाथो भाव्यानां तेन भावना॥८१॥

दूसरे ग्रन्थमें कहा है कि, भावना देनेयोग्य द्रव्यके समान क्वाथ्य द्रव्य ग्रहण करके, उसे आठ गुने जलमें पकावे, आठवां अंश रह-जानेपर उतार कर उससे भावना दे ॥ ८१ ॥

क्षारोदक[1]।

पानीयो यस्तु गुल्मादौ तद्धारानेकविंशतिम् ।
स्त्रावयेत्षड्गुणे तोये केचिदाहुश्चतुर्गुणे ॥ ८२ ॥

गुल्मादि रोगमें जो क्षारजल दियाजाता है, इसको बनाना हो तो ६ गुने जलसे २१ वार चुआले ॥ ८२ ॥

---

१ क्षारात् षड्गुणं जलं दत्त्वा वस्त्रेण दोलायंत्रं विधाय तदधः पात्रं पातयित्वा क्षारोदकं ग्राह्यम्।एवमेकविंशतिवारं पुनः पुनः स्त्रावयित्वा ग्राह्यम् । अथवा केचिदाहुः-क्षाराच्चतुर्गुणं जलं दत्त्वा चतुर्थावशिष्टे स्त्रावयित्वा तज्जलं ग्राह्यम् ॥

क्षारजलके तैयार करनेके नियम-क्षार (खार) और जल (ऊपर कहेहुए परिमाणके अनुसार) दोनोंको इकट्ठाकर दोलायंत्रमें रखके नीचेके पात्रमें चुआवे, ऐसेही २१ बार चुआकर उस जलको ग्रहणकरे । कोई कोई कहते हैं कि, क्षारका चौगुने जलसे पाककरे । चौथाई जल रहनेपर उतार कर चुआ ले । फिर उस जलको ग्रहण करे ॥

दोवार कहे द्रव्योंका ग्रहण ।

घृततैलादियोगे च यद्द्रव्यं पुनरुच्यते ।
ज्ञातव्यं तदिहाचार्यैर्भागतो द्विगुणेन हि ॥ ८३ ॥
'आदिशब्देन चूर्णवटिकादिलेहप्रभृतिषु ज्ञेयमिति'।

घी, तेल, वटिका और चूर्णादिके योगमें जो द्रव्य दो वार कहा है, उस द्रव्यके दो भाग देने चाहिये । संग्रहकार कहते हैं कि, तैलादिमें जो आदि शब्द है चूर्ण वटिका और अवलेह आदिका ग्रहण होता है ८३

चूर्णके पाकका निषेध ।

प्रायो न पाकचूर्णानां भूरिचूर्णस्य तेन हि ।
आसन्नपाके प्रक्षेपः स्वल्पस्य पाकमागते ॥ ८४ ॥

चूर्णका प्रायः पाक न करना चाहिये एवम् न वहुतसेहीका होता है किन्तु जो पाक तयार होगया हो थोड़ा गुनगुना हो उस समय उसमें विधि पूर्वक थोड़ा चूर्ण डाला जा सकता है ॥ ८४ ॥

मोदक और चूर्णमें गुड ।

चूर्णे चूर्णसमो ज्ञेयो मोदके द्विगुणो गुडः ॥ ८५ ॥

औषधीके चूर्णमें चूर्णकी वरावर गुड और मोदकमें औषधिसे दूना गुड डाले ॥ ८५ ॥

---

१ **प्रायः** इति प्राचुर्येण प्राचुरार्थ इति आसन्नपाक इति उपस्थितपाके न तु पाकमापन्ने, तथा सति प्रचुरचूर्णानां प्रवेशो न स्यादित्यर्थः । स्वल्पस्य चूर्णस्य पाकान्ते कदुष्णदशायां प्रक्षेप इति शेषः । (इसका भाव टीकामें आगया है) ॥

सौ पल या पलोंकी संख्यामें उतना ही।

संख्यापलानां शतशः पलं प्रश्रूयते यतः।
तदा चाकृतिमानेन तेषां तु ग्रहणं विदुः ॥ ८६॥

जहांपर एक शतपल और पलकी संख्या कही हो, वहांपर जिस द्रव्यकी जैसी संख्या हो उसे उतनाही ग्रहण करे ॥ ८६ ॥

अनुपानकी विधि।

स्थिरतां गतमक्लिन्नमन्नमद्रवपायिनः।
भवेत्तु बाधाजनकमनुपानमतः पिबेत् ॥ ८७ ॥

आहारके संग द्रवद्रव्य (जलादि) का पान करनेसे पेटमेंका खाया हुआ अन्न द्रव्य सूखकर विविध प्रकारके दोष उत्पन्न करके पीडादायक होता है। इस कारण अनुपानके साथ आहारादि करने चाहियें॥ ८७॥

यथा जलागतं तैलं क्षणेनैव प्रसर्पति।
तथा भैषज्यमङ्गेषु प्रसर्पत्यनुपानतः ॥ ८८ ॥

शार्ङ्गधरमें लिखा है कि, जैसे जलमें तेल डालनेसे क्षणभरमें जलमें फैल जाता है, वैसेही औषध सेवन करनेके पीछे अनुपानका सेवन करनेसे थोडे कालमेंही औषधिका गुण सारे शरीरमें फैल जाता है॥ ८८॥

अनुपानके गुण।

रोचनं बृंहणं वृष्यं दोषघ्नं वातभेदनम्।
तर्पणं मार्दवकरं श्रमक्लमहरं परम् ॥ ८९ ॥

---

१ **आकृतिमानेने**ति—यदनुरूपसंख्या येषां तथा तेषां द्रव्याणां न ग्रहणं विदुः। एतेन मृद्वादीनां द्वैगुण्यं नानुष्ठेयम्। "पलोल्लेखागते मानेन द्वैगुण्यमिहेष्यते।" इति वचनात्।

मृदु आदि कोई द्रव्य दूना ग्रहण न करे। पहले कहा गया है कि, पल बताकर जहां मान कहा गया है उस स्थानमें दूना ग्रहण न करे॥

दीपनं दोषशमनं पिपासाच्छेदनं परम्।
रसवर्णकरश्चापि अनुपानं सदोच्यते ॥ ९० ॥

योग्य अनुपान रुचिदायक, स्थूलता करनेवाला, शुक्रका बढानेवाला, दोषका नाश करनेवाला, वायुका अनुलोमन करनेवाला, तृप्तिकारी, देहको कमनीय करनेवाला, श्रांति और क्लान्तिका नाशक, वातादि दोषोंका नाश करनेवाला, श्वासका नाश करनेवाला, रसवर्द्धक और शरीरके वर्णका प्रसाधक है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

वातापिर्भक्षितो येन अगस्त्येन द्विजोत्तम।
अनुपानं कृतं तेन का कथा सर्वदेहिनाम् ॥९१॥

हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ! अगस्त्यजी मुनिने जिस अनुपाकके बलसे वातापि राक्षसको भक्षण करके पचा डाला था, उन्होंने भी अनुपान किया था तो साधारण जीवोंकी क्या बात है, जो विना अनुपानके भोजन हजम करले? अनुपानके साथ खानेसे जीर्ण हो जाता है॥९१॥

अनुपानं करोत्यूर्जां तृप्तिं व्याप्तिं दृढाङ्गताम्।
अन्नसङ्घातशैथिल्यविक्लित्तीजारणानि च ॥ ९२ ॥

अष्टांगहृदयके सूत्रस्थानमें लिखा है कि, अनुपान–मनकी परम प्रसन्नता, तृप्ति, खाये हुए भोजनको सब शरीरमें फैलाना, अंगोंकी दृढता, कठोर सन्धानकी शिथिलता, विक्लेदन और अन्नकी परिणति करता है ॥ ९२ ॥

दोष भेदसे अनुपान भेद।

स्निग्धोष्णं मारुते शस्तं पित्ते मधुरशीतलम्।
कफेऽनुपानं रूक्षोष्णं क्षये मांसरसं पयः ॥ ९३ ॥

वायुके कोपमें चिकने और गरमद्रव्य, पित्तके कोपमें मधुर और शीतलद्रव्य एवं कफके कोपमें रूखे व गरम द्रव्यका अनुपान देना ठीक है तथा क्षयरोगमें मांसरस वा दूधका अनुपान दे ॥ ९३ ॥

स्नेहोंका अनुपान।

उष्णोदकानुपानश्च स्नेहानामथ शस्यते।
ऋते भल्लातकस्नेहात्तत्र तोयं सुशीतलम् ॥ ९४ ॥

सब प्रकारके स्नेह (घृतादि) पीनेके पीछे गरम जलका अनुपान देना ठीक है, परन्तु भिलावेका स्नेह पीनेके पीछे शीतल जलका अनुपान करे ॥ ९४ ॥

भल्लातक और तौवरस्नेहका अनुपान।

भल्लाततौवरे स्नेहे शीतमेव जलं पिबेत्।
जलमुष्णं घृते पेयं यूषं लेहेऽनुशस्यते ॥
वसामज्जाऽन्नमण्डः स्यात्सर्वेषूष्णमथांबु वा ॥ ९५॥

भिलावे और तौवरका स्नेहका सेवन करके शीतल जलपान करे। घीके सेवनके पीछे गरम जलका पान एवम् तेलपान करके यूष पीना चाहिये। चरबी, मज्जा और अन्नमांड आदि खानेके पीछे गरम जल पीये अथवा खाली जल पी लेना चाहिये ॥ ९५ ॥

कुछ अनुपानोंकी गणना।

शीतोष्णतोयासवमद्यमुद्ग-
फलाम्बुधान्याम्लपयोरसानाम्।
यस्यानुपानन्तु भवेद्धितं यत्
तस्मै प्रदेयं त्विह मात्रया तत् ॥ ९६ ॥

---

१ पत्रैस्तु केशराकारैः कलायसदृशैः फलैः। वृक्षस्तुवरको नाम पश्चिमार्णवतीरजः ॥ राजनि०अरहरका अर्थ करता है।

शीतलजल, गरमजल, आसव (मद्यविशेष) मद्य और मूंगादिका यूष, पाल नींबू आदि, अम्लरस कांजी आदि, दूध और मांसरस इनमेंसे जो जिसके लिये हितकारी हो, उसे वही अनुपान योग्य मात्रासे पीछे पीने दे ॥ ९६ ॥

चावल मूंग मांसादिका अनुपान।

यूषो मांसरसो वापि शालिमुद्गादिभोजनम्।
मांसादीनां चानुपानं धान्याम्लं दधिमस्तु वा ॥९७

सांठीके चावल और मूंगादि खानेवालोंके लिये अनुपानमें यूष और मांस रस हितकारी है। मांसादिके पीछे कांजी और दहीके साथको पीना हितकारी है ॥ ९७ ॥

अनुपानकी मात्रा।

अनुपानं प्रयोक्तव्यं व्याधौ श्लेष्मभवे पलम्।
पलद्वयन्त्वनिलजे पित्तजे तु पलत्रयम्।
गुडक्षौद्रसितादीनां पलार्द्धं च विशेषतः॥
"पलमत्र सौश्रुतम्" ॥ ९८ ॥

श्लेष्मासे उत्पन्न हुए रोगोंमें एक पल, वायुके रोगोंमें दो पल और पित्तसे उत्पन्न हुए रोगोंमें तीन पल अनुपान देना चाहिये, परन्तु गुड, शहद और चीनी इनका अनुपान देना हो, तो विशेष करके पहले कहे हुएकी अपेक्षा आधी मात्रा दे ॥ ९८ ॥

ज्येष्ठा मात्राके पात्र।

दीप्ताग्नयो महाकायाः स्नेहसात्म्यमहाबलाः।
विसर्पोन्मादगुल्मार्त्ताः सर्पदंष्ट्रविषार्दिताः॥
ज्येष्ठां मात्रां पिबेयुस्ते पलान्यष्टौ विशेषतः॥९९॥

दीप्त अग्निवाले, बडे शरीरवाले, स्नेहसेवी और अत्यन्त बलवान् एवं विसर्प (पाण्डुरोग) उन्माद और गुल्म रोगवाले तथा सांपसे काटे हुए और विष खानेसे अर्दित हुए पुरुष ८ पलकी ज्येष्ठा मात्राका अनुपान सेवन करे तो सर्वोत्तम है॥ ९९॥

लोहका अनुपान।

माहिषं गव्यमाजञ्च पयो ग्राह्यं त्रिधायसि।
माहिषं भस्मके देयमाजं क्षीरं पुनर्म्मतम् ॥ १००॥
कोष्ठदोषे, कफे श्वासे कासे चापि नवज्वरे।
गव्यमन्यत्र सर्वत्र समवारिप्रसाधितम् ॥ १०१ ॥

भैंसका दूध, गायका दूध और छाग दूध ये तीन दूध लोहेके अनुपानमें प्रयोग करने चाहिये। इनमें भस्मकरोग (यह ऐसा रोग है कि चाहे जितना खाये मगर भूंख बनी रहे) में लोहेका प्रयोग करना हो तो भैंसके दूधका अनुपान दे। कोष्ठदोष, कफकोप, श्वास और खांसीके रोगोंमें तथा नवज्वरमें छाग (बकरी) के दूधका अनुपान दे। इसके सिवा सब रोगोंमें गायके दूधकाही अनुपान देना चाहिये. ये तीनों प्रकारके दूधोंको बराबरके जलके साथ औटाये जलके जल जानेपर उतारके अनुपानमें प्रयोग करे॥ १०० ॥ १०१॥

इसीपर पतञ्जलि।

सर्वत्र गव्यमेवेति मतमाह पतञ्जलिः।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं लौहात्षष्टिगुणं पयः ॥ १०२॥
यदा तु वर्द्धितं क्षीरं तदार्द्धं भोजने पिबेत्।
दद्यात्संशमने तस्य योऽत्यर्थं क्षीणपावकः॥१०३॥

पतञ्जलि कहते हैं कि, सब जगह गायके दूधका प्रयोग करे । लोहेके वजनसे६०गुने दूधका अनुपान करे । दूधकी मात्राके बढानेपर पहिले जितना दूधका वजन कहाहै उसके सिवा और दूध भोजनके साथ सेवनकरे । क्षीण अग्निवाले पुरुषको संशमनमें दूध दे॥१०२॥१०३॥

अनुपान विशेष ।

अनुपानं हिमं वारि यवगोधूमयोर्हितम् ।
दध्नि मद्ये विषे क्षौद्रेऽनुष्णपित्तामयेऽपि च ॥ १०४॥
ऊर्ध्वजत्रुगदे श्वासकासोरःक्षतपीनसे ।
गीतभाष्यप्रसाहेषु स्वरभेदे न तद्धितम् ॥ १०५ ॥
न पिबेच्छ्वासकासार्तो रोगे चाप्यूर्ध्वजत्रुगे ।
क्षतोरस्कः प्रसेकी च यस्य चोपहतः स्वरः॥१०६॥

जौ और गेहूंके भोजनके अन्तमें, विषदोषमें, शहद पीनेके पीछे और पित्तरोगमें शीतलजल हितकारी हैं । पर वो हसलीके ऊपरके रोगोंमें, श्वास व खांसीके रोगोंमें, पेट घावके रोगोंमें और पीनसके रोगोंमें अच्छा नहीं एवम् गीत और वाक्य कहकर थकेहुओंके लिये तथा स्वरभंगरोगमें शीतल जल हितकारी नहीं है । इस कारण ऐसोंके लिये शीतलजलका अनुपान न दे ॥ १०४–१०६ ॥

शिशुओंको दवा देनेका परिमाण ।

प्रथमे मासि जातस्य शिशोर्भेषजरात्तिका ।

---

१ जातस्य शिशोर्बालकस्य प्रथमे मासि भेषजस्य रक्तिका मात्रा मध्वादिभिर्लेढुं दातव्या । प्रथममासादारभ्य द्वादशमासपर्यंतं मासं मासं प्रतिरक्तिकैका वृद्धिः कार्या नात्र दशरक्तिकपरिमाणमाषकं विभागम् । किन्तु संवत्सरपूर्णार्थे द्वादशरक्तिका मात्रा देयेति भावः ॥ यहां दश रत्तीका मासा नहीं किन्तु १२ का है तबही सालमें मासा पूरा होता है. बाकी टीकामें लिख चुके ।

अवलेह्या तु कर्त्तव्या मधुक्षीरासिताघृतैः ॥
एकैकां वर्द्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत् ॥ १०७ ॥

एक मासके बालकको एक रत्ती औषध, मधु, दूध, चीनी और घृतमेंसे विधि पूर्वक किसीका अवलेह बनाके सेवन करावे। फिर एक वर्षकी उमरतक प्रतिमासमें एक एक रती औषधिकी मात्रा बढावें। एकवर्ष पूरी होजानेपर औषधिकी बारह रत्तीकी मात्राका प्रयोग करना चाहिये ॥ १०७ ॥

१६ वर्षतक मास वृद्धि ७० तक कर्ष तथा फिर बाल तुल्य ।

तदूर्द्ध्वं[1] माषवृद्धिः स्याद्यावदाषोडशाब्दिकः ।
ततस्तु सप्ततिं यावत्कर्षमात्रां प्रयोजयेत् ॥
एवमेव विभागोयं तदूर्द्ध्वं बालवत् क्रिया ॥ १०८ ॥

एक वर्षसे लेकर १६ वर्षतक हरएक वत्सरमें एक एक माषा औषधिकी मात्रा बढाये। सोलह वर्षके पीछे सत्तरवर्षतक एक कर्ष मात्रासे औषधिका प्रयोग करे। इस प्रकार विधिके अनुसार मात्राका विभाग करले। फिर सत्तरवर्षके ऊपर सारी जिन्दगीतक बालकके समानही औषधिकी मात्राका प्रयोग करले ॥ १०८ ॥

रक्तिमारभ्य कर्षन्तु मानं बालगदे मतम् ।
कर्षादौ तु जलश्रुत्या क्वाथ्यस्य कार्षिको मतः॥ १०९॥

---

१ तदूर्ध्वमिति । द्वादशमासादूर्ध्वं तेन द्वितीयवर्षे प्रथममासादारभ्य षोडशवर्षपर्यन्तम् माषकवृद्धया कर्षपूरणं कार्यम् । ततः षोडशवर्षात् सप्ततिं यावत् तावदेव कर्षेणैव व्यवहारः ॥ तदूर्ध्वं सप्ततेः परं यावज्जीवनपर्यंतं बालवत् मात्रा कार्येति शेषः ॥ इसका भाव टीकामें है ।

" कर्षादाविति प्रागुक्तं परिभाषया। कर्षादौ तु पलं यावद्दद्यात्षोडशिकं जलमित्याख्यायेति शेषः"

बालकको जो औषधि दी जाती है उसकी मात्रा एक रत्तीसे लेकर एक कर्ष तक हैं। क्वाथका प्रयोग करना हो तो काढेकी चीजें एक कर्ष लेकर पहले कहे हुए वचनके अनुसार १६ गुने पानीमें काढा बना प्रयोग करे ॥ १०९ ॥

बालकके बदले धात्रीको।

यस्तु स्यात्क्षीरपो बालः कषायं पातुमक्षमः।
तदा भिषक् कुमारस्य तस्य धात्रीश्च पाययेत् ॥११०॥

दूधका पीनेवाला बालक क्वाथको न पीसके तो जिसका दूध पीता हो, उसे यह पिला दे ॥ ११० ॥

स्तनपर लेपकरके पिलाना।

ये गदानां च ये योगाः प्रोक्ताः स्वे स्वे चिकित्सिते।
तेषां कल्केन संलिप्तौ कुमारं पाययेत् स्तनौ ॥१११॥

चिकित्सास्थानमें जिस जिस रोगोंके जो जो योग कहे हैं,बालकको वे रोग हों तों उसी २ योगका कल्क, धाई (बालक जिसका दूध पीताहै) उसके दोनों स्तनोंमें लेप करके बालकको स्तन पिलावे १११

बालकोंके भेद तथा रोगका कारण।

त्रिविधाः कथिता बालाः क्षीरान्नोभयवर्त्तिनः।
स्वास्थ्यं ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां व्याधिसम्भवः।१२

अष्टाङ्गहृदयने उत्तर स्थानमें बताया है कि, दूध पीनेवाले, अन्न खाने वाले, दूध और अन्न दोनोंका खानेवाले ये तीन प्रकारके बालक हैं, दूध अन्नके शुद्ध रहनेसे बालक निरोग रहते हैं दूषित दूध व अन्नसे रोगी होजाते हैं ॥ ११२ ॥

औषध भक्षणके आठ काल।

भैषज्यकालो भक्तादौ मध्ये पश्चान्मुहुर्मुहुः।
सामुद्गं भक्तसंयुक्तं ग्रासे ग्रासान्तरेऽष्टधा ॥ ११३॥

औषधि भक्षण करनेके काल आठ हैं, (१) भोजनके पहिले, (२) मध्यमें, (३) अन्तमें, (४) बारम्बार, (५) सामुद्ग, (भोजनसे पहिले और पीछे), (६) भक्तसंयुक्त, (७) ग्रासमें (८) दूसरे ग्रासमें, ये आठ काल पूरे हुए ॥ ११३ ॥

आठों कालोंके उपयोग।

अपाने विगुणे पूर्वं समाने मध्यभोजने।
व्याने तु प्रातरशनमुदाने भोजनोत्तरम् ॥ ११४ ॥
वायौ प्राणे प्रदुष्टे तु ग्रासे ग्रासान्त इष्यते।
श्वासकासपिपासासु तत्तु कार्यं मुहुर्मुहुः ॥ ११५ ॥
सामुद्गं हिक्किने देयं लघुनान्नेन संयुतम्।
सम्भुज्यं त्वौषधं भक्ष्यैर्विचित्रैररुचौ हितम् ॥११६॥
" सामुद्गमिति--सामुद्गं भेषजं विद्यादन्नस्याद्यवसानयोः " इति ॥

(१) अपानवायुके कुपित होजानेपर भोजनसे पहले, (२) समानवायु कुपित हो तो भोजनके मध्य, (३) व्यान कुपित हो तो प्रातःकाल, (४) उदानवायु कुपित हो तो भोजनके पीछे, (५) प्राणवायु कुपित हो तो ग्रासके बीच औषधिका प्रयोग करे। (६) दमा, खांसी और प्यासके रोगमें बारम्बार, (७) हिचकीके रोगमें लघु द्रव्यके साथ भोजनसे पहले और पीछे एवम् (८) अरुचि-

रोगमें विविध प्रकारके श्रेष्ठ खाद्य द्रव्योंके साथ औषधिका प्रयोग करे। (ये उन आठोंका उपयोग है पर क्रम नहीं है) ॥ ११४-११६ ॥

दूसरोंके दशकाल।

अभक्तं पूर्वभक्तं च मध्यभक्तं सभक्तकम्।
भक्तोपरिष्टात् सामुद्गं भक्तस्यैवान्तरेऽपि च॥११७॥
ग्रासे ग्रासान्तरे चैव मुहुर्मुहुरिति स्मृतः।
काला दशैते धीमद्भिरौषधस्य समासतः॥ ११८॥

अभक्त, पूर्वभक्त, मध्यभक्त, सभक्तक, पश्चाद्भक्त, सामुद्ग, भक्तान्तर, ग्रासमें, ग्रासान्तरमें और वारंवार ये विद्वानोंने औषधि भक्षण करनेके दश काल कहे हैं॥ ११७॥ ११८॥

उनके उपयोग।

बलिनो महतो व्याधेरभुक्ते भेषजे हितम्।
सर्वव्याधिहरं पथ्यं पूर्वभक्तं महौषधम्॥ ११९॥
मध्यकायगतान्रोगान् मध्ये भक्तं निहन्ति च।
सभक्तं सुकुमाराणां बालानामौषधद्विषाम्॥ १२०॥
भक्तोपरिष्टात् सुस्थश्च ऊर्ध्वजत्रुविकारिणाम्।
सम्बन्धो वर्चसां मुद्गं दीप्ताग्निबलिनां हितम् १२१॥
भक्तयोरन्तरे ज्ञेयं भोजनद्वयमध्यतः।
तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत मध्यदेहविकारिणाम्॥१२२॥
ग्रासे ग्रासे कृताग्नीनां रत्यासक्तधियामपि।
ग्रासान्तरे हितं विद्यात् कुष्ठमेहविकारिणाम्॥
श्वासकासपिपासानां तत्तु कार्यं मुहुर्मुहुः॥१२३॥

(१) बलवान् महाव्याधिके रोगीको विना खाये औषधि लेना हितकारी है। (२) पथ्य भोजनसे पहिले खानेपर सब रोगोंको हरती है। (३) भोजनके बीचमें खानेसे शरीरके बीचके रोगोंको नष्ट करती है। (४) सुकुमार बालक एवम् जो औषध खानेको बुरा समझते हैं उन्हें भोजनके साथ दवा दे। (५) भोजनके ऊपर दवा स्वस्थ तथा जलके ऊपरके विकारियोंको दी जाती है। (६) कब्जके रोगी और प्रदीप्त अग्निवाले बलवान् पुरुषोंके लिये, सामुद्ग (भोजनके आदि और अन्तमें) औषधका सेवन करना चाहिये। (७) जिनके शरीरमें रोग व्याप रहा है उनके लियें भक्तान्तर हितकारी है। दो भोजनोंके बीचमें जो हो वो भक्तान्तर कहाता है। (८) रत्यासक्त बुद्धि और मन्दाग्निवाले पुरुषोंके लिये ग्रास ग्रास पर दी जाती है। (९) कुष्ठ और मेदके रोगियोंको ग्रासान्तरमें दी जाती है। (१०) दमा, खांसी और प्यासके रोगोंमें बारबार दवा देना चाहिये॥ ११९-१२३॥

भेषजका सामान्य काल।

भैषज्यमभ्यवहरेत्प्रभाते प्रायशो बुधः।
कषायास्तु विशेषेण तत्र भेदस्तु[1] दर्शितः॥ २४॥

शा. सं. द्वि. अध्यायमें कहा है कि, बहुधा प्रातःकालमें वैद्यगण औषधिका प्रयोग करें, पर कषाय, स्वरस, कल्क, काढा, फांट और

---

१ भेदः पुनः कषायपानेन वा पयस्तु प्रातः सायं मध्याह्ने रात्रौ च व्याधिविशेष धातुविशेषप्रकृतिविशेषतारतम्यतया देयमित्यर्थः॥ यह भेद केवल कषाय पानसे है। दूध तो प्रातः सायं और मध्याह्न किसी भी समय रोग विशेष, धातु विशेष और प्रकृतिके तारतम्यको देखकर करे।

हिम ये विशेष करके प्रातःकालमें ही दे । वैद्य औषधि विचारके प्रातःकाल, मध्याह्नकाल अथवा सायंकाल और रात्रिमें प्रयोग करे। प्रातःकालका ही नियम नहीं है प्रायः प्रातःकाल है ॥ २२४ ॥

औषध भक्षणके पांच काल।

ज्ञेयः पंचविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ।
किञ्चित्सूर्योदये जाते तथा दिवसभोजने ॥
सायन्तने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि ॥ २५॥

औषधि भक्षण करनेके पांच काल हैं--(१) कुछ सूर्योदय होनेपर, (२) दिनके समय भोजन करनेके समय, (३) सन्ध्यासमयके भोजनमें, (४) वारवाम्वार और (५) रात्रिकालमें औषधि दी जाती है ॥ १२५ ॥

प्रथम काल।

प्रायः पित्तकफोद्रके विरेकवमनार्थयोः ॥ २६ ॥
लेखनार्थे च भैषज्यं प्रभातेऽनन्नमाहरेत् ।
एवं स्यात्प्रथमः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ॥२७॥

इति प्रथमकालः ।

इनमें पित्त और कफ कुपित होनेपर पित्तको विरेचन और कफके वमन व (दोषोंके विलेखन, भेदन, पतला करनेके लिये) कर्षणके लिये अन्नके अतिरिक्त भिन्न कोठे प्रातःकाल औषधिका प्रयोग करे। औषधि ग्रहण करनेका यह प्रथम काल है यह प्रथम काल पूरा ॥ १२६ ॥ १२७॥

द्वितीय काल।

भैषज्यं विगुणेऽपाने भोजनाग्रे प्रशस्यते।
अरुचौ चित्रभोज्यैश्च मिश्रं रुचिरमाहरेत् ॥ २८ ॥
समानवाते विगुणे मन्देऽग्नावपि दीपनम्।
दद्याद्भोजनमध्ये तु भैषज्यं कुशलो भिषक्॥ २९ ॥
व्यानकोपे च भैषज्यं भोजनान्ते समाहरेत्।
हिक्काक्षेपककम्पेषु पूर्वमन्ते च भोजनात्।
एवं द्वितीयकालश्च प्रोक्तो भैषज्यकर्मणि ॥ १३० ॥

इति द्वितीयकालः।

अपानवायुके कोपमें भोजनके कुछ पहले औषधिका प्रयोग करे। अरुचिके रोगमें अनेक प्रकारका रुचि कारक भोज्य वस्तुओंके साथ औषधका प्रयोग करे। समानवायुके कोपमें और मन्दाग्निमें चतुर वैद्य भोजनके बीचमें अग्निको प्रदीप्त करनेवाली औषधियोंका प्रयोग करे। व्यानवायुके कोपमें भोजनके अन्तमें सेवन करे। हिचकी, आक्षेप और कम्पादि रोगोंमें भोजनके पहले और पीछे औषधिका प्रयोग करना चाहिये। यह औषधि प्रयोगका दूसरा काल हैं। यह द्वितीयकाल पूरा हुआ॥ २८–३० ॥

तृतीय काल।

उदाने कुपिते वाते स्वरभङ्गादिकारिणि।
ग्रासे ग्रासान्तरे देयं भैषज्यं सात्म्यभोजने ॥३१॥
प्राणे प्रदुष्टे सात्म्यस्य भक्तस्यान्ते च दीयते।
औषधं प्रायशो धीरैः कालोऽयं स्यात्तृतीयकः ॥३२

इति तृतीयः कालः।

---

१ सान्ध्य। २ सान्ध्यस्य इति च पा०॥

कुपित होकर स्वरभंगादिरोगोंके करनेवाले उदानवायुके कुपित होनेपर ग्रास ग्रासके साथ या दो दो ग्रासोंके बीचमें सात्म्य भोजनमें (या सायंके भोजनमें) औषधिका प्रयोग करे। पंडितोंका प्रायः यही मत है कि,प्राणवायुके कोपमें हितकारी (सांयकालके) भक्ष्यद्रव्यके-साथ, भोजनके अन्तमें औषधिका प्रयोग करे । यह औषधि प्रयो-गका तीसरा काल है यह तीसेरा काल पूरा हुआ॥ ३१॥ ३२॥

चौथा काल।

मुहुर्मुहुश्च तृट्छर्दिहिक्काश्वासगरेषु च।
सान्नञ्च भेषजं दद्यादीति कालश्चतुर्थकः॥ ३३॥

इति चतुर्थः कालः।

प्यास, वमन, हिचकी, श्वास और गर (विष) के दोषोंमें अन्नके साथ वारम्वार औषधिका प्रयोग करे । यह औषधिप्रयोगका चौथा काल है। यह औषधि खानेका चौथा समय पूरा हुआ॥ ३३॥

पंचम काल।

ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु लेखने बृंहणे तथा।
पाचने शमने देयमनन्नं भेषजं निशि॥
इत्ययं पंचमः कालः प्रोक्तो भैषज्यहेतवे॥ ३४॥

इति पंचमः कालः।

हसलीके ऊपरके रोग तथा हसलीके रोगोंमें, वढे हुए वातादि रोगोंके घटानेमें बृंहणमें, पाचनमें और शमनमें रात्रिके समय अन्न रहित औष-धिका प्रयोग करे।औषधि प्रयोगके पांचमें कालका यह वर्णन हुआ३४

१ उत्पन्नहुए विषम दोषोंका निवारण करना या बरावर करना।

अथ क्रियाकालव्यवस्थामाह।

या तूदीर्णं शमयति नान्यं व्याधिं करोति च।
सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत्॥३५॥

जिस क्रियासे उत्पन्नहुआ रोग नाशको प्राप्त हो पर दूसरे रोगोंकी उत्पत्तिका कारण होजाय, वो क्रिया नहीं कहाती किन्तु उसे चिकित्सा कहा जाता है; जिससे एक रोगका निवारण होकर दूसरे रोगकी उत्पत्ति न हो ॥ ३५ ॥

तथा च चरकचिकित्साप्राकृतीयाध्याये-

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः।
सा हि क्रिया विकाराणां कर्म तद्भिषजां मतम्॥३६॥
भिषजाम्-चिकित्सकानामित्यर्थः।

जिस क्रियासे शरीरकी सब धातुएँ बराबर रहैं, उसे चिकित्सा कहतेहैं; चिकित्सकोंकी सम्मतिके अनुसार ऐसी क्रियाही है ॥ ३६ ॥

बडेमें छोटी और छोटेमें बडी चिकित्सा उपयुक्त [illegible]

अल्पे गदे महत्कर्म्म क्रिया लघ्वी महागदे।
द्वयमेतदकौशल्यं कौशल्यं युक्तिकर्मता ॥ १३७॥

साधारण रोगमें महान् चिकित्सा और महारोगमें अल्प चिकित्सा ये दोनों कोई क्रिया कौशल्य नहीं है इस कारण यथायोग्य चिकित्साही हितकारी है। इससे यही सिद्ध हुआ कि, बड़े रोगमें बडा तथा छोटेमें छोटी करे ॥ १३७ ॥

---

२ अन्यामिति-ज्वरादीनामन्यतमं न उदीरयेदिति न वर्द्धयेत् न जनयेदित्यर्थः

क्रियासंकरका विचार।

क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां समाचरेत्।
पूर्वस्यां शांतवेगायां न क्रियासंकरो[1] मतः ॥१३८॥

एक क्रियासे रोगकी शान्ति न हो तो दूसरी क्रिया करे। परन्तु जबतक पहली क्रियाका (पहली औषधिकी क्रियाका) वेग शान्त न हो तबतक दूसरी क्रिया नहीं करनी चाहिये। क्योंकि, मिश्र औषधिका प्रयोग परस्पर गुणविरोधी होकर अनेक प्रकारके अग्निमान्द्य आदि रोगोंको उत्पन्न करसकता है॥ १३८॥

तथापि सांकर्य्यमाह।

क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिः[2] क्रियासांकर्य्यमिष्यते।
भिन्नरूपतया तास्तु तन्न कुर्वंति दूषणम्॥ १३९॥

---

१ **संकरो** व्यामिश्रता। अतो मुख्यप्रयोगाणां मिश्रणमेकस्मिन्नेव रोगिणि न कर्त्तव्यं परस्परगुणविरोधात् भैषज्यगुणवैकल्यादग्निमान्द्यजननत्वाच्च ॥
(इसका भाव टीकामें आगया)

२ **तुल्यरूपाभि** क्रियाभिः क्रियासांकर्यमिष्यते तु पुनस्ताः क्रियाः चेद्भिन्नरूपा भवन्ति तदा न साङ्कर्यमिति तु शब्देनैतदुच्यते। अतो भिन्नरूपतया अतुल्यरूपाभिः क्रियाभिर्न क्रियासाङ्कर्यं भवतीत्यर्थः ॥(इसका भाव टीकामें आगया)

एतेनैव बोधयति पाचनघृतयोर्द्वयोर्गुडवटकलेहगुडिकादीनाञ्च पाचनयुक्तानामेकस्मिन्नेव रोगिण्येकदिने प्रयोगः कर्तव्यः यथा व्याधेरनुपानं यद्यत् पाचनविहितमिति, किन्तु भिन्नरूपेणौषधद्वयेन दोषप्रसङ्गः स्यादेव, अतः परस्परविरोधित्वेन औषधद्वयकल्पना कार्या। यथा गुडिकाद्वये लेहद्वयमाधिकामिति दिक् ॥

इससे यह बात सिद्ध होती है कि, पाचन युक्त दोनों पाचनघृत तथा गुण वटक लेह और गुडिकादिकोंका एकही रोगीपर एकही दिनमें प्रयोग करना चाहिये पर व्याधिपर अनुपान जिस जिस पाचनका जो जो हो उसके साथ करे। किन्तु भिन्नरूप दो औषधोंका प्रयोग करोगे तो दोष होगाही इस कारण अतुलरूपा दो क्रियाओंकी कल्पना करनी चाहिये जैसे कि, दो गुलिकाओंमें दो लेह अधिक होते हैं॥

एक प्रकारकी दो क्रियाओंका सांकर्य (व्यामिश्र) दोषजनक है परंतु भिन्न प्रकारकी दो क्रियाओंका सांकर्य दोषावह नहीं है॥ १३९॥

रसका परिवर्तन।

षड्भिः केचिदहोरात्रैः केचित्सप्तभिरेव च।
इच्छन्ति मुनयः प्रायो रसस्य परिवर्त्तनम्।
कृत्वा कुर्य्यात्क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत्॥१४०

किसीके मतसे रसका बदल छः दिन रातमें होता है. और कोई कहते हैं कि, सात दिन रातमें भली भांतिसे रस बदल जाता है। यथा समय अर्थात् रोगके आरम्भमें चिकित्सा करना उचित है। चिकित्साके समयका अतिक्रमण करना उचित नहीं है॥ १४०॥

रोगके नाश न होनेका कारण।

सर्वे च रोगे प्रशमाय कर्म्म
हीनातिरिक्तं विपरीतकालम्।
मिथ्योपचारान्न हि तद्विकारं
शान्तिं नयेत्पथ्यमपि प्रयुक्तम्॥ १४१॥

रोगकी शान्तिके लिये अल्प चिकित्सा, अधिक क्रिया योग्य कालको लांघ जाकर चिकित्सा और मिथ्या उपचार (वृथा औषधिका प्रयोग) ये सब न करने चाहिये। क्योंकि, इस रीतिसे सुपथ्यभी दिया जाय तोभी उससे रोगका नाश नहीं होता॥ १४१॥

अथ परिभाषाकी संज्ञा।

अम्लवेतस .. चतुरम्ल या पञ्चाम्ल।

वृक्षाम्लमातुलुङ्गाम्लौ बदराम्लाम्लवेतसौ।
चतुरम्लमिदं तद्वि पञ्चाम्लञ्च सदाडिमम्॥१४२॥

वृक्षाम्ल (विषांविल), बिजौरानींबू, बदरी, बेर या (बडा-आमला) और अमलवेंत इन चारके संयोगको चतुरम्ल और चतुर-म्लके साथ दाडिमका संयोग करनेसे उसे पंचाम्ल कहते हैं॥ १४२॥

लवण पंचक। सैन्धवान्याश्च सामुद्रं -

सौवर्चलं सैन्धवं च विडमौद्भिदमेव च।
सामुद्रेण सहैतानि पञ्च स्युर्लवणानि च॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चलवणानि क्रमाद्विदुः॥ १४३॥

कालानोन, सेंधानोन, विरियासंचर, सांभर आदि, समुन्दरनोंन इन पांचोंको 'पंचलवण' कहते हैं। क्रमानुसार इनमेंसे एकको एक लवण, दोको द्विलवण, तीनको त्रिलवण इत्यादि कहा जाता है १४३

मूत्रवर्ग। सैरियाजा...

अविमूत्रमजामूत्रं गोमूत्रं माहिषञ्च यत्।
हस्तिमूत्रमथोष्ट्रस्य हयस्य च खरस्य च॥
इति प्रोक्तानि मूत्राणि यथा सामर्थ्ययोगतः१४४॥

मेषमूत्र, छागमूत्र, गोमूत्र, महिषमूत्र, हस्तिमूत्र, उष्ट्रमूत्र, अश्वमूत्र और गर्दभमूत्र इन आठोंको मूत्रवर्ग कहते हैं; इनमें जिसका मूत्र कहा जाय उसका ही प्रयोग करे॥ १४४॥

चार स्नेह।

सर्पिस्तैलवसामज्जा स्नेहोप्युक्तश्चतुर्विधः।
पानाभ्यञ्जनवस्त्यर्थं नस्यार्थश्चैव योगतः॥ १४५॥

घी, तेल, वसा और मज्जा ये चार प्रकारके स्नेह हैं,इनका पान, अभ्यङ्ग (मर्दन), पिचकारी और नस्यकर्ममें प्रयोग होता है॥ १४५॥

८

दुग्धवर्ग।

अविक्षीरमजाक्षीरं गोक्षीरं माहिषञ्च यत्।
उष्ट्रीणां हस्तिनीनाञ्च वडवायाः स्त्रियस्तथा१४६॥

मेषीदुग्ध, छागीदुग्ध, गोदुग्ध, महिषीदुग्ध, ऊँटनीका दूध, हथिनीका दुग्ध और घोडीका दूध इनको दुग्धवर्ग कहते हैं। (निघण्टुमें मृगी और गधीका दूध अधिक आया है ॥ १४६ ॥

चातुर्जातक।

चातुर्जातं समाख्यातं त्वगेलापत्रकेशरैः ॥ १४७ ॥

दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर इन चारोंको चातुर्जात कहते हैं ॥ १४७ ॥

त्रिजातक।

तदेव त्रिसुगन्धि स्यात्त्रिजातकमकेशरम् ॥ १४८ ॥

नागकेशरके सिवाय और तीनों सुगन्धियां हो यानी दालचीनी, इलायची और तेजपात इनके संयोगको त्रिजातक कहते हैं॥१४८॥

सर्वगन्ध।

चातुर्जातककर्पूरकक्कोलागुरुसिह्लकम्।
लवङ्गसहितञ्चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् ॥ १४९ ॥

चातुर्जातक, कपूर, काकोली, अगुरु (अगर), शिलारस (लोबान) और लोंग इनके मेलको सर्वगन्ध कहते हैं ॥ १४९ ॥

महती त्रिफला और स्वल्पात्रिफला।

पथ्या विभीतकं धात्री महती त्रिफला मता।
स्वल्पा काश्मर्यखर्ज्जूरपरूषकफलैर्भवेत् ॥ १५०॥

हरड, आमला और बहेडा इनको 'महती त्रिफला' कहते हैं, गाम्भारीफल, खजूर और फालसे इन तीनोंको 'स्वल्प त्रिफला' कहते हैं।(निघण्टुमें परूषक-फालसोंके स्थानमें द्राक्षा लेते हैं]॥ १५०

त्रिकटु त्र्यूषण व्योष और त्रिमद।

पिप्पली शृङ्गबेरश्च मरिचं त्र्यूषणं विदुः।
विडङ्गमुस्तचित्रैश्च त्रिमदः समुदाहृतः॥ १५१॥

पीपल, सोंठ और मिर्च इन तीनको त्र्यूषण त्रिकुटु या व्योष कहते हैं। वायविडंग मोथा और चीता इन तीनोंको 'त्रिमद' कहते हैं॥१५१

दूधके पांच वृक्ष।

उदुम्बरो वटोऽश्वत्थो वेतसः[1] प्लक्ष एव च।
पञ्चैते क्षीरिणो वृक्षाः संज्ञया समुदाहृताः॥१५२॥

गूलर, वट, पीपल, वेतस (गन्ध मुस्त) और पिलखन इन पांचोंको क्षीरिवृक्ष कहते हैं॥ १५२॥

पंचपल्लव।

आम्रजम्बूकपित्थानां बीजपूरकबिल्वयोः।
गन्धकर्माणि सर्वत्र पत्राणि पंचपल्लवम्॥ १५३॥

आम,जामुन, कैथ,बिजौरानींबू और बेल इन पांचोंको पञ्चपल्लव' कहते हैं। इनके पत्रोंका प्रयोग सब जगह गन्धकर्ममें होताहै॥१५३॥

पंच कोल या पंचोषण।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम्।
पञ्चकोलमिदं प्राहुः पञ्चोषणमथापरे॥ १५४॥

---

१ वेतसोऽत्र गन्धिनः इति ख्यातः। गन्धमुस्त इत्युत्तरदेशे यस्य प्रसिद्धिः। प्लक्ष इति वटः अथवा पर्कटीत्यश्वत्थभेदः॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतामूल और सोंठ इन पांचको 'पंचकोल या पंचोषण' कहते हैं ॥ १९४ ॥

षडूषण।

पञ्चकोलं समरिचं षडूषणमुदाहृतम् ॥ १५५ ॥

पंचकोलके साथ मिर्चका संयोग करनेसे उसे षडूषण कहते हैं९९

महत्पंच मूल।

बिल्वश्योनाकगाम्भारी पाटला गणिकारिका।
एतन्महत्पञ्चमूलं संज्ञया समुदाहृतम् ॥ १५६ ॥

बेल, श्योनाक, गाम्भारी, पाढल, अरणी इन पांचोंको महत् पञ्चमूल कहते हैं ॥ १९६ ॥

लघु पंचमूल।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरम्।
कनीयः पञ्चमूलं स्यादुभयं दशमूलकम् ॥ १५७ ॥

शालपर्णी (शरिवन), पिठवन, बृहती, कटेरी और गोखरू इन पांचोंको स्वल्प पञ्चमूल कहते हैं। इन दोनों पञ्चमूलको इकट्ठा करनेसे '**दशमूल**' कहा जाता है ॥ १९७ ॥

पंचतृण अथवा तृणज पंचमूल।

कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चैव तृणोद्भवम्।
पञ्चतृणमिदं ख्यातं तृणजं पञ्चमूलकम् ॥ १५८ ॥

कुश, कांस, शर, दर्भ और गन्ना इन पांचोंके पंचतृण एवं इनके मूलको तृणज पंचमूल कहते हैं ॥ १९८ ॥

वल्लीज पंचमूल।

विदारी चाजशृङ्गी च रजनी सारिवामृतम्।
वल्लीजं पञ्चमूलं च कथितं मुनिपुङ्गवैः ॥ १५९ ॥

विदारीकंद, मेढाश्रृंगी, हलदी, अनन्तमूल और गिलोय इन पांचोंके मूलका मुनियोंने वल्लीज पंचमूल कहा है ॥ १५९ ॥

कंटकाख्य पंचमूल।

करमर्दः[1] श्वदंष्ट्रा च हिंस्रा झिण्टी शतावरी।
कण्टकाख्यं पञ्चमूलं निर्दिष्टं सूक्ष्मबुद्धिभिः १६०॥

पंडितलोग करंज, गोखरू, तालमखाना, पियावासा और शतावरी इन पांचोंके मूलोंको कण्टकाख्यमूल कहा है ॥ १६० ॥

अष्टवर्ग।

ऋद्धिर्वृद्धिश्च मेदे द्वे तथर्षभकजीवकौ।
काकोली क्षीरकाकोलीत्यष्टवर्गः प्रकीर्त्तितः ॥१६१

ऋद्धि, वृद्धि, मेद, महामेद, ऋषभक, जीवक, काकोली और क्षीर-काकोली इन आठोंके मेलको 'अष्टवर्ग' कहते हैं ॥ १६१ ॥

जीवनीय गण।

अष्टवर्गश्च पर्ण्यौ जीवन्ती मधुकं तथा।
जीवनीयगणः प्रोक्तो जीवनश्च पुनस्ततः ॥१६२ ॥

अष्टवर्गके साथ मषवन, मुगवन, जीवन्ती और मुलहठीका संयोग किया जाय तो इसे 'जीवनीयगण' कहते हैं ॥ १६२ ॥

श्वेत मरिच।

शोभाञ्जनस्य यद्बीजं तच्छ्वेतमरिचं स्मृतम् ॥१६३॥

सैंजनके बीजको 'श्वेतमरिच' कहते हैं ॥ १६३ ॥

---

१ करमर्दः—करंजः। श्वदंष्ट्रा—गोक्षुरकः। हिंस्रा—कुडवकाली—तालमखानाः। स्पष्टमन्यत् ॥

ज्येष्ठाम्बु और सुखोदक।

ज्येष्ठाम्बु तण्डुलाम्बु स्यादुष्णाम्बु च सुखोदकम्।१६४

चावलके पानीको 'ज्येष्ठाम्बु' और गरमजलको 'सुखोदक' कहते हैं ॥ १६४ ॥

गुडाम्बु।

गुडयोगाद्गुडाम्बु स्याद्गुडवर्णरसान्वितम्॥१६५॥

गुडके समान रस, गन्ध और रंगवाले गुडयुक्त जलको 'गुडाम्बु' कहते हैं ॥ १६५ ॥

वेशवार।

निरस्थि पिशितं पिष्टं स्विन्नं गुडसमान्वितम्।
कृष्णामरिचसंयुक्तं वेसवार इति स्मृतः ॥ १६६ ॥

अस्थिहीन मांसको पीसकर गुड, घी, पीपल और मिर्चके संयोगसे पकाया जाय तो उसे 'वेशवार' कहते हैं ॥ १६६ ॥

अम्ल मूलक।

काञ्जिकं व्युषितं पक्कं मूलकं त्वम्लमूलकम् ॥ १६७ ॥

मूली, कांजीमें भिगो रखकर बासी करके पकाली जाय तो इसको 'अम्लमूलक' कहते हैं ॥ १६७ ॥

कट्वर।

दध्नः ससारकस्यात्र तक्रं कट्वरमिष्यते ॥ १६८ ॥

विना मक्खन निकाले दहीके तक्रको 'कट्वर' कहते हैं ॥ ६८ ॥

तक्र, उदश्वित् और मथित।

तक्रं ह्युदश्विन्मथितं पादाम्ब्वर्द्धाम्बु निर्ज्जलम्१६९

दहीमें चौथाई जल मिलाकर मथे तो उसका नाम 'तक्र' है। आध भाग जल मिलाकर मथनेसे 'उदश्वित्' कहते हैं और निर्जल दही मथा-जाय तो 'मथित' कहते हैं ॥ १६९ ॥

दधि कूर्चिका और तक्र कूर्चिका।

दध्ना सह पयः पक्वं सा भवेद्दधिकूर्चिका।
तक्रेण यत् पयः पक्वं सा भवेत्तक्रकूर्चिका ॥१७०॥

दहीके साथ दुग्धपाक करनेसे उसे 'दधिकूर्चिका' एवम् तक्र (मट्ठा) के साथ दुग्धपाक करनेसे 'तक्रकूर्चिका' कहते हैं॥ १७०॥

अचार।

कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च।
यत्र द्रव्येऽभियुज्यन्ते तच्छुक्तमभिधीयते ॥१७१॥

तरलद्रव्यमें कन्द, मूल, फल उबालकर तेल और लवणादि डाल-कर रख दे तो उस द्रव्यको 'शुक्त' कहते हैं ॥ १७१ ॥

सीधु और आसव।

सीधुरिक्षुरसैः पक्वैरपक्वैरासवो भवेत् ॥ १७२ ॥

गन्नेके रसको पकाकर जो मद्य तैयार किया जाता है उसे 'सीधु' कहते हैं। कच्चे रससे जो मद्य तैयार होता है तिसको 'आसव' कहते हैं ७२

मैरेय।

मैरेयं धातकीपुष्पगुडधान्याम्लसंहितम् ॥ १७३ ॥

धायफूल, गुड और धान्याम्ल (धान्यसे सन्धान किये हुए अम्ल)के मेलसे जो मद्य तैयार होता है उसे 'मैरेय' कहते हैं ॥ १७३ ॥

आरनाल।

आरनालन्तु गोधूमैरामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः।
पक्वैर्वा सन्धितैस्तत्तु सौवीरसदृशं गुणैः ॥१७४॥

पके या कच्चे भुस्सीरहित गेहूंका सन्धान करके जो पदार्थ तैयार किया जाता है, उसे ' आरनाल ' कहते हैं । इसके गुण सौवीरकेही समान हैं ॥ १७४ ॥

कांजीके बडे ।

मन्थनी नूतना धार्या कटुतैलेन लेपिता ।
निर्मलेनाम्बुना पूर्या तस्यां चूर्णं विनिक्षिपेत् १७५
राजिकाजीरलवणहिंगुशुण्ठीनिशाकृतम् ।
निक्षिपेद्वटकांस्तत्र भाण्डस्यास्यं च मुद्रयेत् ॥
ततो दिनत्रयादूर्ध्वमम्लाः स्युर्वटका ध्रुवम् ॥१७६॥

मथनेके नये पात्रमें कडवे तेलका लेप करके उसमें निर्मल जल भरे, श्वेतसरसों, जीरा, सेंधा, हींग, सोंठ और कच्ची हलदीका चूर्ण डालकर गोलियें बनाकर इस पात्रमें धरे; फिर पात्रका मुख बन्द कर दे । पीछे दूसरे दिन रस खट्टा होतेही जानले कि, वटक (बड़े) तैयार होगये ॥ १७५ ॥ १७६ ॥

कृशरा वा त्रिशरा ।

तिलतण्डुलमाषैश्च कृशरा त्रिशरेति सा ॥ १७७ ॥

तिल, चावल और माष (उड़द आदि) से तैयार हुए यवागूको कृशरा (खिचडी) वा त्रिशरा कहते हैं ॥ १७७ ॥

शुक्त चुक्र ।

यन्मस्त्वादि शुचौ भाण्डे सगुडक्षौद्रकाञ्जिकम् ।
धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं शुक्तं चुक्रं तदुच्यते॥१७८॥

निर्मल पात्रमें गुड, शहद और कांजीके साथ मस्तु आदि, धान्यराशिमें तीन रात धरके ग्रहण किये जांय तो उसे शुक्त चुक्र कहते हैं७८

आसव।

यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः ॥१७९॥

विना पकाई औषधि और जलसे विधिपूर्वक तैयार हुए मद्यको 'आसव' कहते हैं ॥ १७९ ॥

अरिष्ट।

अरिष्टः क्वाथसिद्धः स्यात्सम्पक्वो मधुरद्रवैः॥ १८०

पके हुए क्वाथ मधुररस और द्रव (जल आदि) पदार्थोंसे सिद्ध हुएको 'अरिष्ट' कहते हैं ॥ १८० ॥

शीत रस सीधु और पक्व रस सीधु।

आश्रितश्चापि सीधुः स्यादित्याहुस्तद्विदो जनाः १८१
आश्रित इति-सम्यक्पक्वः ॥

आश्रित अर्थ कहते हैं-अच्छी तरह पका एवम् अपिशब्दके बलसे अपक्व भी आ उपस्थित होता है, इस तरह इसके पक्व और अपक्व ये दो भेद होजाते हैं अर्थात् जो विना पके मीठा और जल आदिकोंसे बनाया जाय वो "शीत रस सीधु" तथा जो अच्छी तरह पकाकर बनाया जाय उसे "पक्वरस सीधु" कहते हैं, ऐसा इस विषयके जाननेवाले कहते हैं ॥ १८१ ॥

प्रसन्ना, कादम्बरी, जगल और भेदक।

सुरामण्डः प्रसन्ना स्यात्तत्र कादम्बरी घना।
तदधो जगलो ज्ञेयो भेदको जगलाद्घनः ॥१८२॥

सुराके मंड यानी ऊपरवाले स्वच्छ भागको 'प्रसन्ना' कहते हैं। प्रसन्नाकी बनिस्बत 'कादम्बरी' नामक मद्य घना होता है। कादंबरीके निचले मद्यको 'जगल' कहते हैं। 'भेदकमद्य' जगलमद्यकी बनिबस्त गाढा होता है ॥ १८२ ॥

सुरा।

परिपक्वान्नसन्धानसमुत्पन्नां सुरां जगुः ॥

तण्डुल आदि अन्नको उबालकर जो विधिपूर्वक यंत्रसे सन्धान करते हैं उससे सुरा तैयार होती है ॥

पुक्कस और किण्वक।

पुक्कसो हृतसारश्च सुराबीजं च किण्वकम् ॥१८३॥

सारहीन सुराको पुक्कस कहते हैं। सुराके बीजको किण्वक कहते हैं. जिनमें कि, मदशक्ति रहती है ॥ १८३ ॥

वारुणी या ताडी।

यत्तालखर्जूररसैरावृता सैव वारुणी ॥ १८४ ॥

ताल और खजूरके रससे अलग २ सन्धान करनेसे जो मद्य तैयार होता है उसे वारुणी मद्य (ताडी) कहते हैं ॥ १८४ ॥

गुडशुक्त (सिरका या अचार)।

गुडाम्बुना सतैलेन कन्दशाकफलैस्तथा।
आसुतं चाम्लतां यातं गुडशुक्तं तदुच्यते ॥१८५॥

गुडके जल या तेलसे विविध कन्दशाक और फलोंका अचार आदि डाला जाय जब यह कुछ खट्टा होजाय तो इसे 'गुडशुक्त' यानी सिरका या अचार कहते हैं ॥ १८५ ॥

इक्षुशुक्त और द्राक्षाशुक्त।

एवमेवेक्षुशुक्तं स्यान्मृद्वीकासम्भवं तथा ॥ १८६ ॥

ऊपर कही हुई रीतिसे गन्नेके रस और दाखका सन्धान हो तो उसे 'इक्षुशुक्त' या द्राक्षशुक्त कहते हैं ॥ १८६ ॥

तुषाम्बु और सौवीर।

तुषाम्बु चासुतं ज्ञेयं माषैर्विदलितैर्यवैः।
सुनिस्तुषैश्च पक्वैश्च सौवीरं चासुतं भवेत् ॥ १८७ ॥

उर्द और जौको दलकर सन्धान करनेसे जो तैयार हो उसे 'तुषांबु' कहते हैं। पकाये हुए भुस्सीहीन जौओंके सन्धानसे तैयार हुई वस्तुको 'सौवीर' कहते हैं ॥ १८७ ॥

काञ्जिक।

कुल्माषो धान्यमण्डेन चासुतं काञ्जिकं भवेत् १८८

धान्यमांडके साथ अर्द्धसिद्ध गोधूमादिका सन्धानसे सिद्ध की हुई "कांजी' होती है ॥ १८८ ॥

तुषोदक।

यदाह चरकः–

भृष्टान्माषतुषान् सिद्धान् यवचूर्णसमन्वितान्।
आश्रितानम्भसा तद्वज्जातं तच्च तुषोदकम्॥१८९॥

चरकमुनिने कहा है कि, उर्दकी भुस्सी भुनाकर पकावे। उसमें जौका आटा मिलाकर कांजी तैयार करनेकी विधिके अनुसार जल डालकर भिगो रक्खै। जलके खट्टे होजानेपर 'तुषोदक' तैयार हुआ जाने॥ ९८९॥

श्रेष्ठ कांजी।

आशुधान्यं क्षोदितञ्च बालमूलन्तु खण्डशः।
कृतं प्रस्थमितं पात्रे जलं तत्राढकं क्षिपेत् ॥१९०॥
तावत्सन्धीय संरक्षेद्यावदम्लत्वमागतम्।
काञ्जिकं तत्तु विज्ञेयमेतत्सर्वत्र पूजितम् ॥ १९१ ॥

क्षोदित, आशुधान्य, कच्ची मूलीके टुकडे ले इकट्ठा साफ बर्त्तनमें सन्धान करके रक्खे, उसमें पानी एक प्रस्थ या एक आढक डाले फिर खट्टा होतेही कांजीको तैयार हुआ जाने और सब कामोंमें उसका व्यवहार करे ॥ १९०॥१९१ ॥

शिण्डाकी ।

शिण्डाकी चासुता ज्ञेया मूलकैः सर्षपादिभिः१९२

मूली या सलगमके टुकडोंको उबालकर उसमें सरसों आदि डालकर सन्धान करनेसे जो तैयार होती है उसे 'शिंडाकी' कहते हैं१९२

मधुशुक्त ।

जम्बीररसप्रस्थं मधुनः कुडवं तथा।
तावच्च पिप्पलीमूलमेकीकृत्य घटे क्षिपेत् ॥
धान्यराशौ स्थितं मासं मधुशुक्तं तदुच्यते १९३॥

जंबीरी नींबूका रस एक प्रस्थ, शहद एक कुडव तथा पीपलामूल एक कुडव लेकर ये सब एककर एक घडेमें रखके एक मासतक नाजके ढेरमें रखनेपर ' मधुशुक्त ' तैयार होता है ॥ १९३ ॥

षडयूष काम्बलिक और प्रमथ्या ।

तक्रं कपित्थं चाङ्गेरी मरिचाजाजिचित्रकैः।
सुपक्वं षडयूषोऽयमयं काम्बालिकोऽपरः ॥ १९४ ॥
दध्यम्ललवणस्नेहतिलमाषसमन्वितः।
संज्ञा प्रमथ्या विहिता योगे दीपनपाचने ॥ १९५॥

मट्ठा, कैथ, चांगेरी, मिर्च, जीरा और चीता इन सबोंके इकठे करके पकानेपर जो जूष तैयार होता है इसको ' षडयूष ' कहते हैं। इन सब चीजोंके साथ दही खट्टे पदार्थ सेंधा घृतादि स्नेह तिल और उर्दका संयोग करके पाक करनेपर ' काम्बलिक जूष ' तयार होता है। इसका दूसरा नाम ' प्रमथ्या ' है। अग्निके उकसाने और हाजमेके योगमें यह विशेष फलदायी है ॥ १९४–१९५ ॥

तर्पण लाजसत्तु ।

द्रवेणातो भृतास्ते स्युस्तर्पणं लाजसक्तवः॥१९६॥

खीलोंके सत्तू, द्रव (तरल) द्रव्यसे मिला लिये जाँय तो इनका यह मेल ' तर्पण ' कहा जाता है ॥ २९६ ॥

मन्थ ।

सक्तवः सर्पिषा युक्ताः शीतवारिपरिप्लुताः ।
अनत्यच्छातिसान्द्राश्च मन्थ इत्यभिधीयते॥१९७॥

घीमें मलेहुए सत्तू, शीतल जलमें डुबाकर अधिक स्वच्छ या अधिक घने न हों तो मन्थ कहे जाते हैं ॥ १९७ ॥

उष्णोदक ।

क्वाथ्यमानन्तु यत्तोयं निष्फेनं निर्म्मलीकृतम् ।
भवत्यर्द्धावशिष्टन्तु तदुष्णोदकमिष्यते ॥ १९८ ॥

आगपर चढाया हुआ पानी निर्मल और फेन रहित एवं आधा बाकी रह जाय तो उसे उष्णोदक कहते हैं ॥ १९८ ॥

भेषज नाम ।

चिकित्सितं व्याधिहरं पथ्यं साधनमौषधम् ।
प्रायश्चित्तप्रशमनं प्रकृतिस्थापनं हितम् ॥ १९९ ॥
विद्याद्भेषजनामानि तच्चापि द्विविधं स्मृतम् ।
सुस्थस्योजस्करं किंचित्किञ्चिदार्त्तस्य रोगनुत् २०

चिकित्सित, व्याधिहर, पथ्य, साधन, औषध, प्रायश्चित्तप्रशमन, प्रकृतिस्थापन और हित ये सब औषधियोंके नाम हैं । ये औषधें भी दो प्रकारकी हैं, कोई कोई औषधि निरोगीको बलकारक हैं, कोई रोगीके रोगका नाश करनेवाली है ॥ १९९-२०० ॥

इति परिभाषाप्रदीपका तृतीयखण्ड समाप्त ।

अथ चतुर्थखण्डः।

पञ्चकर्माणि।

शोधनोंकी उपयोगिता।

दोषाः कदाचित्कुप्यन्ति जिताः कालेन पांचनैः।
ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः॥ १॥

शार्ङ्गधरने तृ. ख. के चौथे अध्यायमें कहा है कि, वायु, पित्त और कफ इन तीनोंके कुपित होनेसे यथासमयमें दोषका नाश करनेवाले लंघन और पाचनादिसे कुपित दोष दब जाते हैं। किन्तु जो संशोधनसे शुद्ध होगये फिर उनकी उत्पत्ति नहीं होती॥ १॥

पंचशोधनोंके नाम।

वमनं रेचनं नस्यं निरूहश्चानुवासनम्।
ज्ञेयं पञ्चविधं कर्म्म मात्रा तस्य प्रयुज्यते॥
यदा वहेद्वहिर्दोषान् पंचधा शोधनं हि तत्॥ २॥

वमन 'उलटी' विरेचन (दस्त–जुलाब), नस्य, निरूह (वस्ती) और अनुवासन (वस्ती) इन पांच क्रियाओंके योग्य मात्राके प्रयोगसे शरीरके दोषोंको शुद्ध करले॥ २॥

पंचकर्म करनेकी आयु।

न नस्यं न्यूनसप्तादेः नातीताशीतिवत्सरे।
न चोनद्वादशे धूमः कवलो नोनपञ्चमे॥ ३॥

---

१ पाचनैरिति लंघनपाचनादिभिर्दोषहारिभिरित्यर्थः।

न शुद्धिरूनदशमे न चातिक्रान्तसप्ततौ।
न न्यूनषोडशातीतसप्ततौ रक्तमोक्षणम्।
आजन्ममरणाच्छस्तः प्रतिमर्षस्तु सर्वदा ॥ ४ ॥

सात वर्षसे नीचे और अस्सी वर्षसे अधिक उमरवालेपर नस्यका प्रयोग न करै। १२ वर्षकी उमरसे कम बालकको धूम, पांच वर्षसे कम उमरके बालकको वमन और विरेचन न करावे। ७० वर्षसे अधिक उमरवालेकोभी यह प्रयोग न करावे। १६ वर्षसे कम अथवा ७० वर्षसे अधिक उमरवालेका रक्तमोक्षण (फस्तादि) कराना ठीक नहीं है। पर प्रतिमर्षका जन्मसे लेकर जीवितकालतक सदाही व्यवहार होसकता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

वमन विधि।

पूर्वाह्णे पाययेत्पीतं जानुतुल्यासने स्थितः।
तन्मना जातहृल्लासप्रसेकश्छर्दयेत्ततः ॥ ५ ॥

वमनकी विधि कही जाती है—प्रातःकालही औषधिका सेवन कराके जानुके बराबर ऊंचे आसनपर बैठ जाय। एकाग्रचित्तसे उत्साहके साथ वमनकी चिन्ता करे। इसमें पहले हृल्लास (वमनवेग) फिर प्रसेक (मुखस्राव) और फिर वमन होता है ॥ ५ ॥

पंच कर्मका समय।

चरकस्त्वाह—

माधवप्रथमे मासि नभस्यप्रथमे पुनः।
सहस्यप्रथमे चैव वाहयेद्दोषसंचयम् ॥ ६ ॥

---

१ **माधवप्रथमे** मासीति वैशाखप्रथमे भागे, भाद्रस्य प्रथमे, पौषस्य प्रथमे च दोषसंचयं दोषाणां संचयमुपचयं वाहयेत् निःसारयेदित्यर्थः।

चरकमुनि कहते हैं कि, वैशाख, भाद्रपद और चैत्र मासके प्रथममें देहमें इकट्ठे हुए दोषोंको निकाले ॥ ६ ॥

अन्यच्च–

मधौ[1] सहे च नभसि मासि दोषांस्तु वाहयेत् ॥७॥

दूसराभी वचन है कि, चैत्र, आग्रहायण और श्रावणमासमें एकत्र हुए दोषोंको निकाले ॥ ७ ॥

विरुद्धकाल।

अत्युष्णवर्षशीता हि ग्रीष्मवर्षाहिमागमाः।
औषधस्य शरीरस्य ते भवन्ति विकल्पकाः ॥८॥
विकल्पका इति–विरुद्धकार्यजनकाः ॥

ग्रीष्मकालमें अधिक गरमी, वर्षाकालमें अत्यन्त वर्षा और शीतकालमें अत्यन्त शीत हो तो औषधिके और शरीरके लिये विरुद्धकार्य करनेवाली होती है ॥ ८ ॥

उपयुक्त काल।

प्रावृट्शुक्लनभौ ज्ञेयौ शरदूर्ज्जसहौ पुनः।
फाल्गुनश्च मधुश्चैव वसन्तः शोधनं प्रति ॥ ९ ॥

संशोधनकी क्रियाओंका प्रयोग वर्षाकाल यानी आषाढ, श्रावणमें, शरत्काल यानी कार्तिक और अगहनमें वसन्तकाल यानी फागुन और चैतमें करे ॥ ९ ॥

सम्यग्वमन तथा गुण।

क्रमात्कफः पित्तमथानिलश्च
यस्यैति सम्यग्वमितः स इष्टः।

---

१ मधौ--चैत्रेमासि, सहे--आग्रहायणे, नभसि--श्रावणे, दोषान् वाहयेदित्यर्थः।

हृत्पार्श्वमूर्द्धेन्द्रियमार्गशुद्धौ
तनोर्लघुत्वेऽपि च लक्ष्यमाणे ॥ १० ॥

आमाशयस्थः कफस्तस्मात्, कफश्रुत्या तस्य प्रथमोल्लेखः। ततस्तदधः पित्ताशयस्तस्मात् पित्तम्। पक्काशयस्ततोऽनिलः। एति-गच्छति। क्रमादित्यनुक्रमात् ॥

१. आमाशयमें कफ, उसके नीचे पित्त तथा पित्तके नीचे वात रहती है। जिसके तीनों क्रमशः कफ, पित्त और वायु भली भांति सहज स्वभावसे चलते हों, हृदय, बगल, मस्तक, इन्द्रिय और समस्त स्रोत शुद्ध होजाँय, शरीरमें हलकापन आजाय तो जानले कि, वमन-क्रिया ठीक हुई ॥ १० ॥ आर पित्त के दर्शन हो जाए तो समझलें कि

कफप्रसेकः स्वरभेदतन्द्रा
निद्रास्यदौर्गन्ध्यविषोपसर्गाः।
गुरुत्वकासग्रहणीप्रदोषा
न सन्ति जन्तोर्वमितः कदाचित् ॥ ११ ॥

भलीभांतिसे वमन करानेपर, कफका निकलना, स्वरभेद, तन्द्रा, निद्रा, मुखकी दुर्गन्ध, विषके उपद्रव, शरीरका भारीपन, खांसी और ग्रहणी आदि समस्त रोग कभी नहीं होते ॥ ११ ॥

असद् वमनके दोष।

दुश्छर्दिते स्फोटककोठकण्डू-
हृत्खाविशुद्धिर्गुरुगात्रता च ॥ १२ ॥

खम्-इन्द्रियम्, अतः सर्वेन्द्रियस्याविशुद्धित्वं सामान्यात्। हृद्-हृदयम् एतयोरविशुद्धिरित्यर्थः॥

असम्यक् (अनियमित) एवं अपूर्ण वमनसे फोडा, कब्ज और दाह उत्पन्न होता है । हृदय और इन्द्रियोंके शुद्ध न होनेसे देहमें भारीपन पैदा होजाता है ॥ १२ ॥

आति वमनके दोष ।

R. ✓ **तृण्मोहमूर्च्छानिलकोपनिद्रा-**
बलातिहानिं वमितेऽति विद्यात् ॥ १३ ॥

अधिक वमनसे प्यास, मोह, मूर्च्छा, वायुका कोप, नींदका नाश और बलहानि आदि बुरे लक्षण उत्पन्न होजाते हैं ॥ १३ ॥

क्रिया कालका उपयोग ।

सुस्थवृत्तिमभिप्रेत्य व्याधौ व्याधिवशेन तु ।
कृत्वा शीतोष्णवृष्टीनां प्रतीकारं यथायथम् ।
प्रयोजयेत्क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् १४॥

देहकी सुस्थतापर दृष्टि रखके व्याधिके अनुसार शीत, ग्रीष्म और वर्षाका प्रतीकार करके उचित समयमें रोगोंको दूर करनेकी चेष्टा करे, चिकित्सा कालका उल्लंघन करना उचित नहीं है ॥ १४ ॥

वमनकी दवाकी मात्रा ।

क्वाथ्यद्रव्यस्य कुडवं श्रपयित्वा जलाढके ।
चतुर्भागावशिष्टन्तु वमनेष्ववतारयेत् ॥ १५ ॥

काढेकी चीजें एक कुडव लेकर एक आढक जलमें पकावे । चौथाई भाग रहजाने पर उतार ले, इसी जलको वमनके लिये प्रयोगमें लावे॥१५

वमन विरेचनमें उष्ण मधु ।

क्वाथ्यद्रव्यपले वारि प्रस्थार्द्धं पादशेषितम् ।
कर्षं प्रदाय कल्कस्य मधुसैन्धवयोस्तथा ॥ १६ ॥

सुखोष्णं वितरेद्वान्तौ मधूष्णं स्यान्न दोषकृत्।
प्रच्छर्दने निरूहे च मधूष्णं न विरुद्धचते ॥ १७ ॥
अपक्कपाकमाश्वेव तयोर्यस्मान्निवर्त्तयेत्।
यात्यधो दोषमादाय पच्यमानं विरेचनम् ॥१८ ॥
गुणोत्कर्षात्तु जातूर्द्धमपक्कं वमनं पुनः॥ १९ ॥
तयोरिति-वमनविरेकयोः पक्कापक्कयोरित्यन्वयः॥

एक पल काढेकी चीजें ग्रहण करके प्रस्थ जलमें सिद्ध करे. चौथा अंश रहजानेपर उतार ले, उसमें एक तोला शहद, एक तोला सैंधानोंन डाल गुनगुनेको वमनके लिये प्रयोगमें लावे। शहद उष्ण दोषवाला नहीं होता. क्योंकि, वमनमें और निरूहमें उष्णमधु विरुद्ध नहीं है। क्योंकि, वह परिपाक नहीं होसकता। वमन और विरेचक औषधि प्रयोग करनेपर थोडेही समयमें निकल जाती हैं। पचता हुआ विरेचन दोषोंको ग्रहण करके उनके साथही नीचे जाकर मलद्वारसे वाहर निकल जाता है। वमनकारक औषध अपने गुणकी श्रेष्ठतासे ऊपर जा विना पके ही दोषोंको लेकर वाहर होजाती है॥ १६-१९ ॥

वमन निषेध।

न वामयेत्तैमिरिकं न गुल्मिनं न चापि पाण्डू-
दररोगपीडितान्। स्थूलक्षतक्षीणकृशातिवृद्धा-
नर्शोऽर्दिताक्षेपकपीडितांश्च॥ २० ॥ रूक्षे प्रमेहे
तरुणे च गर्भे गच्छत्यथोर्द्ध्वं रुधिरे च तीव्रे।
दुष्टे च कोष्ठे क्रिमिभिर्मनुष्यं न वामयेद्वर्चसि
चातिवृद्धे॥ २१ ॥

रतोंधा या धुंध गुल्म पाण्डु और उदररोगसे दुःखी व्यक्तिको वमन न कराये। स्थूल, क्षतक्षीण, दुबले, अतिवृद्ध, बवासीरके रोगी, आर्दित और लंवन और निरूहवस्तिवाले, रूक्ष और प्रमेह रोगवाले एवं बालक, गर्भवती, उदावर्त और ऊर्ध्व रक्तके रोगी, क्रिमियोंने जिसका कोठा बिगाड दिया है कब्ज है, ऐसे पुरुषोंको वमनकारक औषधि न दे॥ २०॥ २१॥

विशेष अवस्थामें वमन।

एतेऽप्यजीर्णव्यथिता वम्या ये च विषातुराः।
अत्युल्वणकफा ये च ते च स्युर्मधुकाम्बुना॥२२॥
तैमिरिकादयोपि एतादृशावस्थायां वम्या इति शेषः।

पर जो ये अजीर्णरोगसे पीडित विषरोगसे आक्रान्त या अत्यन्त बढेहुए कफसे पीडित हों तो मुलहठीके क्वाथके साथ उचित वमनकारक औषधि देकर वमन करावे॥ २२॥

वमन योग्य गुल्मी।

मन्दाग्निर्वेदनामन्दा गुरुस्तिमितकोष्ठता।
सोत्क्लेशा चारुचिर्यस्य स गुल्मी वमनोपगः॥२३॥

अग्निकी मन्दता, शरीरमें पीडा, शरीरका भारीपन, कोठका बंध जाना, शरीरका झनझनाना और अरुचि जिस गुल्म रोगीके हो उसे वमन कराना चाहिये॥ २३॥

वमन विरेचनका समय।

शरत्काले वसन्ते च प्रावृट्काले च देहिनाम्।
वमनं रेचनं चैव कारयेत्कुशलो भिषक्॥
तथा वमनसात्म्यश्च धीरचित्तं च वामयेत्॥ २४॥

शरद्, वसन्त और वर्षा इन तीन ऋतुओंमें प्राणियोंको वमन और विरेचन कराना उचित है। जिनको वमनका अभ्यास है पर जो धीर चित्तवाले हैं जिन्हें कि, वमन अनुकूल पड़ता है उन्हेंही वमन कराना चाहिये ॥ २४ ॥

वमनके योग्य रोगी।

विषदोषे स्तन्यरोगे मन्देऽग्नौ श्लीपदेऽर्बुदे।
विसर्पकुष्ठहृद्रोगमेहाजीर्णभ्रमेषु च ॥ २५ ॥
विदारिकाऽपचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु।
अपस्मारज्वरोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु ॥ २६ ॥
नासाताल्वोष्ठपाकेषु कर्णस्रावेऽधिजिह्वके।
गलगण्डेऽतिसारे च पित्ते श्लेष्मगदे तथा ॥
मेदोगदेऽरुचौ चैव वमनं कारयेद्भिषक् ॥ २७ ॥

शार्ङ्गधरमें लिखा है कि, विषदोष, स्तनरोग, अग्निकी मंदता, श्लीपद (पांव आदिका सूजना), अर्बुदरोग, कुष्ठरोग, हृदयके रोग, प्रमेह, अजीर्ण, भ्रमरोग, विदारिका, अपचीरोग, खांसी, दमा, पीनस, वृद्धिरोग, अपस्माररोग, ज्वर, उन्माद, रक्तातिसार एवं नासा तालु और ओठके पाक, कानके बहने, अधिजिह्वकरोग, कण्ठमाला, अतिसार, पित्तश्लेष्मारोग, मेदके रोग और अरुचिके रोगोंमें वैद्यको वमनका प्रयोग करना चाहिये ॥ २५-२७ ॥

वमनके अयोग्य रोगी।

न वामनीयस्तिमिरी न गुल्मी नोदरी कृशः।
नातिवृद्धो गर्भिणी च न स्थूलो न क्षतातुरः२८ ॥

मदार्त्तो बालको रूक्षः क्षुधितश्च निरूहितः।
उदावर्त्तोर्ध्वरक्ती च दुश्छर्द्यः केवलानिली।
पाण्डुरोगी क्रिमिव्याप्तः पठनात् स्वरघातकः॥२९

तिमिररोगी, गुल्म, उदररोगी, दुर्बल, अतिवृद्ध, गर्भिणी, मोटे शरीरवाले, क्षतरोगी, मदार्त्त, बालक तथा रूखीदेहवाले, भूंखे और जिसको निरूहणक्रिया कराईगई हो वे, एवम् उदावर्त्त, ऊर्ध्वगतरक्त-पित्त और वमन न सह सकनेवाले, जिसकी वायु कुपित हुई हो वे, पांडुके रोगी, क्रिमिके रोगी, अधिक पढनेसे जिनका स्वरभंग हुआ हो ऐसे व्यक्तियोंको वमनकारक औषधि न दे॥ २८॥ २९॥

इन्हें भी दशा विशेषमें वमन।

एतेऽप्यजीर्णव्यथिता वम्या ये विषपीडिताः।
कफव्याप्ताश्च ते वम्या मधुक्काथस्य मानतः॥३०॥

जिन्हें पूर्वोक्त रोगभी हों अजीर्ण रोग विषरोग और प्रबल कफ-रोग हों तो मुलहठीका क्काथ पिलाकर वमन करावे॥ ३०॥

ज्येष्ठा मध्यमा और कनीयसी मात्रा।

क्काथपाने नवप्रस्था ज्येष्ठा मात्रा प्रकीर्त्तिता।
मध्यमा षण्मिता प्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी॥३१

शा० में लिखा है कि, वमनप्रयोगके लिये मुलहठीके क्काथके जल-पानकी प्रधानमात्रा नौ प्रस्थ, मध्यममात्रा छः प्रस्थ और हीनमात्रा तीन प्रस्थ है(यहांपर १ प्रस्थसे साढे छः पल समझना चाहिये)॥३१

वमनमें कल्कादिकोंका प्रमाण।

कल्कचूर्णावलेहानां त्रिपलं श्रेष्ठमात्रया।
मध्यमं हि पलं दद्यात् कनीयस्कं पलं भवेत्३२॥

वमनप्रयोगके लियें औषधिके कल्क, चूर्ण और अवलेहकी श्रेष्ठ मात्रा तीन पल, मध्यममात्रा दो पल और हीनमात्रा एक पल है॥३२॥

वमनके उत्तम मध्यम और कनिष्ठ वेग।

वमने चापि वेगाः स्युरष्टौ पित्तान्त उत्तमाः।
षड्वेगा मध्यमा वेगाश्चत्वारोऽप्यवरा मताः॥३३॥

आठवार वमनका वेग आये आठवें बारमें पित्त निकले तो उत्तम तथा छः वेग हो एवम् छठे वेगमें पित्त निकले तो मध्यम एवम् वमनके चार आयें चौथेमें पित्त निकले तो उसे अधम वमन समझना चाहिये ३३

वमन और विरेचनमें प्रस्थ।

वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे।
सार्द्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः॥ ३४॥

बुद्धिमान् लोगोंका कहना है कि, वमन, विरेचन और शोणित निकलवानेमें प्रस्थ साढे तेरह पलका होता है. इस तरह ९४ तोले भरका इसका एक प्रस्थ हुआ॥ ३४॥

दोष भेदसे औषधि भेद।

कफं कटुकतीक्ष्णोष्णैः पित्तं स्वादुहिमैर्जयेत्।
सुस्वादुलवणोष्णैश्च संसृष्टं वायुना कफम्॥ ३५॥

कटु, तीक्ष्ण और उष्ण द्रव्यसे कफ, मधुर और शीतल द्रव्यसे पित्त एवम् मधुर लवण और गरम द्रव्यसे वायुसंयुक्त कफ दब जाता है॥ ३५॥ इति वमनम्॥

अथ विरेचन।

स्निग्धस्विन्नस्य वान्तस्य दद्यात् सम्यग्विरेचनम्॥३६

शार्ङ्गधर कहता है कि, स्निग्ध और स्वेद क्रियाके पीछे वमन क्रिया तथा इसके पीछे विधिपूर्वक विरेचन करावे॥ ३६॥

R

सुश्रुतके कहे विरेचनके गुण ।

**बुद्धेः प्रसादं बलमिन्द्रियाणां
धातुस्थिरत्वं ज्वलनातिदीप्तिम् ।
चिराच्च पाकं वपुषः करोति
विरेचनं सम्यगुपास्यमानम् ॥ ३७ ॥**

सुश्रुत कहता है कि, विरेचनके भलीभांति होनेपर बुद्धि, बल और इन्द्रियोंकी प्रसन्नता एवम् धातुओंकी स्थिरता होती है । अग्नि अत्यन्त प्रदीप्त होती है । बहुतकालमें अवस्थाका पाक होता है यानी युवावस्था शीघ्रही नष्ट नहीं होती ॥ ३७ ॥

अवान्तके विरेचनसे दोष ।

**अवान्तस्य त्वधः स्रस्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः ।
मन्दाग्निं गौरवं कुर्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम् ।
अथवा पाचनैरामं बलासं च विपाचयेत् ॥ ३८ ॥
ग्रहणी-अग्निवहधमनी, तात्स्थ्यादग्निमाहुः ।
तं छादयेत् इति शेषः ॥**

विना वमन कराये विरेचक औषधिका प्रयोग करनेसे कफ नीचे जाकर ग्रहणीनामक नाडीको ढकके मन्दाग्नि भारीपन और प्रवाहिकारोगको उत्पन्न करता है । इस कारण पहले वमन करावे या पाचक औषधिसे आम कफको पकाकर फिर विरेचक औषधिका प्रयोग करे, अन्नादिके धारण करनेवाली नाडीको ग्रहणी कहते हैं, इसमें जठराग्नि रहता है इस कारण वह भी ग्रहणी कहला सकता है । कफ उसे ढक देता है ॥ ३८ ॥

वमनका योग्य।

स्निग्धस्य स्नेहनैः कार्यं स्वेदैः स्विन्नस्य रेचनम्॥३९॥

स्नेहोंसे स्निग्ध हुए एवम् स्वेदनसे खिन्न हुए पुरुषको वमन, विरेचन कराना चाहिये ॥ ३९ ॥

वमनका मुख्य काल।

शरदृतौ वसन्ते च देहशुद्धौ विशेषतः ॥ ४० ॥

विशेष करके शरद् और वसन्तऋतुमें शरीरको शुद्ध करनेके लिये विरेचनका प्रयोग अवश्य करना चाहिये ॥ ४० ॥

विरेचनके अयोग्य।

बालवृद्धावातिस्निग्धः क्षतक्षीणभयार्दितः।
श्रान्तस्तृषार्त्तः स्थूलश्च गर्भिणी च नवज्वरी ४१॥
नवप्रसूता नारी च मन्दाग्निश्च मदात्ययी।
शल्यार्दितश्च रूक्षश्च न विरेच्यो भिषग्वरैः॥ ४२ ॥

वैद्योंको चाहिये कि, बालक, वृद्ध, अतिस्निग्ध, क्षतक्षीण, भय-युक्त, थकित, प्याससे आर्त, स्थूल, गर्भिणी, नवज्वरी, नई प्रसूता स्त्री, मन्दाग्नियुक्त, मदात्ययान्वित, शल्यपीडित और रूखे पुरुषको विरेचन न करायें ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

विरेचनके योग्य।

जीर्णज्वरी गरव्याप्तो वातरक्ती भगन्दरी।
अर्शपाण्डूदरग्रन्थिहृद्रोगारुचिपीडिताः॥ ४३ ॥
योनिरोगप्रमेहार्त्तगुल्मप्लीहव्रणार्दिताः।
विद्रधिच्छर्दिविस्फोटविषूचीकुष्ठसंयुताः॥ ४४ ॥
कर्णनासाशिरोवक्त्रगुदमेढ्रामयार्दिताः।

प्लीहशोथाक्षिरोगार्त्ताः क्रिमिक्षारानिलार्दिताः।
शूलिनो मूत्रघातार्त्ता विरेकार्हा नरा मताः ॥४५॥

पुराने ज्वरसे घिरा, विषके दोषोंसे व्याप्त, वातरक्त, भगन्दर, बवासीर, पाण्डु, उदर, ग्रन्थि, हृद्रोग, अरुचि, योनिरोगे, प्रमेह, गुल्म, तिल्ली, व्रण, बद, वमि, विस्फोट, विषूचिका, कुष्ठ, कर्णरोग, नासारोग, शिरोरोग, मुखरोग, गुह्यरोग, मेढ्रके रोग, शोथ, नेत्ररोग, क्रिमिरोग, वायुसे उत्पन्न हुई पीडा, शूल और मूत्राघात इन रोगोंके रोगियोंको विरेचन देना उचित है॥ ४३–४५॥

मृदु मध्य और क्रूर कोष्ठवाले।

बहुपित्तो मृदुः प्रोक्तो बहुश्लेष्मा च मध्यमः।
बहुवातः क्रूरकोष्ठो दुर्विरेच्यः स कथ्यते॥ ४६॥

बहुतसे पित्तवालेको मृदुकोष्ठ, बहुतसे श्लेष्मावालेको मध्यकोष्ठ और बहुतसे वातवालेको क्रूरकोष्ठ या दुर्विरेच्य कहा जाता है॥ ४६॥

विरेचनकी मात्राएं।

मात्रोत्तमा विरेकस्य त्रिंशद्वेगैः कफात्मकम्।
वेगैर्विंशतिभिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगकैः ॥४७॥
द्विपलं श्रेष्ठमाख्यातं मध्यमञ्च पलं भवेत्।
पलार्द्धं च कषायाणां कनीयस्कं विरेचनम्॥ ४८॥

जितनी औषधिका सेवन करनेसे तीस दस्त हों उसे श्रेष्ठ मात्रा कहते हैं, जितनी मात्रासे २० दस्त हों उसे मध्यम मात्रा और जिस मात्राका सेवन करनेसे १० दस्त हों उसे हीन मात्रा कहते हैं। विरेचक औषधिकी श्रेष्ठमात्रा दो पल, मध्यममात्रा एक पल और हीनमात्रा अर्द्ध पलकी होती है॥ ४७॥ ४८॥

इसीपर आनन्दसेन।

पित्तेन स्यान्मृदुः कोष्ठः क्रूरो वातकफाश्रयात्।
मध्यमः समदोषः स्यान्मात्रा योज्यानुरूपतः॥४९
पलन्तु श्रेष्ठमाख्यातं मध्यं त्वष्टपलं भवेत्।
कर्षमानं कनीयः स्याज्ज्ञेयं श्रेष्ठाद्यपेक्षया॥ ५०॥

आनन्दसेन कहता है कि, पित्तकी अधिकाई होनेसे मृदुकोष्ठ, कफमिली वायुकी अधिकाईसे क्रूरकोष्ठ और दोषकी समतासे मध्यकोष्ठ होता है। इस कारण कोष्ठभेदसे विरेचक औषधिकी मात्राका योग्यतासे प्रयोग करे. विरेचक औषधिकी प्रधानमात्रा एक पल, मध्यममात्रा अर्द्धपल और हीनमात्रा एक कर्ष है। अतएव श्रेष्ठ और मध्यमादिका विचार करके विरेचक औषधिकी मात्राका प्रयोग करना चाहिये॥ ४९॥ ५०॥

वमन विरेचनसे चार प्रकारकी विशुद्धि।

वैनिकी माणिका चापि अम्भकी नलिकी तथा।
चतुर्विधा शुद्धिरुक्ता वमने च विरेचने॥५१॥

वमन और विरेचनकी विशुद्धि चार प्रकारकी है. यथा—वैनिकी, माणिका, अम्भकी और नलिकी॥ ५१॥

जघन्यमध्यप्रवरे तु वेगा-
श्चत्वार इष्टा वमने षडष्टौ।

---

१ **जघन्या**मिति। जघन्ये वमने चत्वारो वेगाः, मध्ये षड्वेगाः, प्रवरेऽष्टवेगाः, तथा च—जघन्यविरेके दश वेगाः, मध्यमे विरेके दशद्विगुणाः, विंशतिरित्यर्थः। प्रवरे श्रेष्ठे विरेके दशत्रिगुणास्त्रिंशद्वेगा इत्यर्थः। विरेके दोषमानेनापि जघन्यादित्वमाहुः। प्रस्थ इत्यादि। द्विगुणप्रस्थो जघन्ये, त्रिगुणो मध्यमे चतुर्गुणः प्रवरे इत्यर्थः॥

दशैव ते द्वित्रिगुणा विरेके
प्रस्थस्तथा द्वित्रिचतुर्गुणाश्च ॥ ५२ ॥

चार वार वमन होनेको जघन्यवेग कहते हैं, छः वमन होनेको मध्यवेग और आठवार वमन होनेको श्रेष्ठ वेग कहते हैं। विरेचक औषधिसे दश वार विरेचन हो तो उसे हीन वेग, बीस दस्त हों तो मध्यवेग और तीस दस्त हों तो उसे श्रेष्ठ वेग कहते हैं। हीनवेगमें द्विगुण प्रस्थ, मध्यवेगमें त्रिगुण प्रस्थ और श्रेष्ठ वेगमें चतुर्गुणप्रस्थका प्रयोग करना चाहिये यानी जितने प्रस्थोंका विधान किया हो दूने तिगुने और चौगुने लेना चाहिये ॥ ५२ ॥

वमन विरेचनकी अवधि।

पित्तान्तमिष्टं[1] वमनं कफान्तश्च विरेचनम् ॥ ५३ ॥

पित्त निकलनेतक वमन तथा कफपर विरेचनकी समाप्ति समझनी ५३

वमन विरेचनकी गणना।

द्वित्रान्[2] सविट्कानपनीय वेगान्
मेयं विरेके वमने तु पीतम् ॥ ५४ ॥

विरेचनके दो या तीन मलवाले दस्तोंको छोड़कर गिने। क्योंकि, उनमें पहिला आहार निकलता है एवं वमनके लिये जितनी मात्रा

---

१ **पित्तान्त**मिति। आत्यन्तिका शुद्धिर्विरेकार्द्धभेषजमात्रया कार्य्या, विरेके यत्प्रस्थादिना जघन्यत्वमुक्तं तदर्द्धं परिमाणेन जघन्यादित्वमपरं वमने ज्ञेयम्। कफान्तमिति। अतिरेकेनात्यन्तिकी शुद्धिरुक्ता ॥ इसका भाव टीकामें आगया है ॥

२ **विरेके द्वित्रान्** सविट्कान् वेगान् अपनीय त्यक्त्वा मेयं गणनीयं परिमाणं कार्य्यं, विरेकसंख्या कर्त्तव्येत्यर्थः। तथा वमने पीतमौषधमपनीय मानं कर्त्तव्यम् वेगानामित्यर्थः। विरेके इति। पूर्वदिनाहारमलविरेकात् प्रथमतः वेगद्वयं त्रयं वा परिहृत्य संख्या कर्त्तव्या इति। वमनेऽपि पीतमौषधं प्रथमवेगेन बहिर्निःसरति, अतस्तत्र गणनीयमतोऽनन्तरं संख्या कार्येति दिक्। इसका तात्पर्य्य टीकामें दिखाचुके ॥

दी जाती है, वो वमनके पहलेही वेगमें गिरजाती है, इस कारण उसे छोडकर गिने ॥ ५४ ॥

(क्रमात्कफः पित्तमथानिलश्च
यस्यैति सम्यग्वमितः स इष्टः ।
हृत्पार्श्वमूर्द्धेन्द्रियमार्गशुद्धौ
तनोर्लघुत्वेऽपि च लक्ष्यमाणे ॥ ५५ ॥)

[यह वमनमें पृ० १२८-१२९ में आचुका है.]

अच्छे विरेचनके गुण ।

स्रोतोविशुद्धीन्द्रियसम्प्रसादौ
लघुत्वमूर्ज्जोऽग्निरनामयत्वम् ।
प्राप्तिश्च विट्पित्तकफानिलानां
सम्यग्विरिक्तस्य भवेत् क्रमेण ॥ ५६ ॥
प्राप्तिरिति-प्रवृत्तिरित्यर्थः ॥

जिसका जुलाब ठीक होजाता है उसके सोतें शुद्ध, इन्द्रियें निर्मल, देहमें हलकापन, अग्निका उकसना और शरीरका स्वस्थपन होता है। मल, वायु, पित्त और कफकी उचित प्रवृत्ति होती है ॥ ५६ ॥

बिगड़ जानेके दोष ।

स्याच्छ्लेष्मपित्तानिलसंप्रकोपः
सादस्तथाग्नेर्गुरुता प्रतिश्या ।
तन्द्रा तथा छर्दिररोचकश्च
वातानुलोम्यं न च दुर्विरक्तेः ॥ ५७ ॥

भलीभांतिसे विरेचन न हो तो कफ पित्त और वायुका कोप, मन्दाग्नि, शरीरका भारीपन, जुकाम, तन्द्रा, वमन एवम् अरुचि होकर वायु कुपित होजाती है ॥ ९७ ॥

अति विरेचनसे हानि।

कफास्रपित्तक्षयजानिलोत्थाः
सुप्त्यङ्गमर्दक्लमवेपनाद्याः।
निद्राबलाभावतमःप्रवेशाः
सोन्मादहिक्काश्च विरेचितेऽति ॥ ५८ ॥

अधिक विरेचन होनेसे कफ, रक्त और पित्तके क्षय होनेसे और वायुसे उत्पन्न हुए रोगोंमें अंगका अवसाद, शरीरमें पीडा, क्लान्ति, कम्प, नींद, बलकी हानि, अन्धकार दीखना और उन्मादक व हिचकी रोग उत्पन्न होजाता है ॥ ९८ ॥

विरेक निषेध।

क्षीणः क्षतोरःक्षतबालवृद्धा
दीनोऽथ शोषो भयशोकतप्तः।
श्रान्तस्तृषार्त्तो परिजीर्णभोक्ता
गर्भिण्यधो गच्छति यस्य चासृक् ॥५९॥
नवप्रतिश्यायपरीतदेहो
नवज्वरी या च नवप्रसूता।
कषायनिष्ठा न विरेचनीयाः
स्नेहादिभिर्ये त्वनुपस्कृताश्च ॥ ६० ॥

क्षीण, क्षत और उरक्षतवाले, बालक, बूढे, दीन, शोथ, भीत, शोकयुक्त, थके हुए, प्यासे, जिसको कि, आहार नहीं पचता उसे,

अधोगामी रक्तपित्तका रोगी, नये जुकामवाले, शराबखोर, नवज्वरी, थोडे दिनकी जच्चा स्त्री, सदा कषायका सेवी, स्नेहादिकोंसे जिसका उपस्कार नहीं किया ऐसे जन विरेचनके योग्य नहीं हैं। अतः इनपर विरेचनका प्रयोग न करे ॥ ५९ ॥ ६० ॥

विरेचनैर्यान्ति नरा विनाश-
मज्ञप्रयुक्तैरविरेचनीयाः।
एतेन पित्तेन परीतदेहान्
विरेचयेत्तानपि मन्दमन्दम् ॥ ६१ ॥

अज्ञानियोंके दिये हुए विरेचनोंसे मनुष्य विनाशको प्राप्त होजाते हैं, इस कारण मूर्खोंकी दवासे विरेचन न कराना चाहिये, किन्तु जिसके देहमें पित्त अधिक हो उसे धीरे धीरे विरेचन कराना चाहिये ॥६१॥

नस्य

नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासाग्राह्यं यदौषधम्।
नावनं नस्यकर्मेति तस्य नामद्वयं मतम् ॥ ६२ ॥

नाकमें डालनेकी दवाको ' नस्य ' कहते हैं। नावन और नस्यकर्म इसके दो नाम हैं ॥ ६२ ॥

नस्यके भेद।

१ विरेचन
२ बृंहण
३ शमन

नस्यभेदो द्विधा प्रोक्तो रेचनं स्नेहनं तथा।
रेचनं कर्षणं प्रोक्तं स्नेहनं बृंहणं मतम् ॥ ६३ ॥

रेचन और स्नेहन भेदसे नस्य दो प्रकारका है। रेचन नस्य वातादि दोषोंका छेदन करता है एवम् स्नेहननस्य धातुवृद्धि करता है ॥ ६३ ॥

नस्यका काल।

कफपित्तानिलध्वंसे पूर्वे मध्येऽपराह्णिके।
दिनस्य गृह्यते नस्यं रात्रावप्युत्कटे गदे ॥ ६४ ॥

कफकी शान्तिके लिये प्रातःकाल, पित्तकी शान्तिके लिये मध्याह्न-काल और वायुकी शान्तिके लिये अपराह्णकालमें नस्यका प्रयोग करना चाहिये। परन्तु कठोर रोग होनेपर रात्रिमेंभी नस्यका प्रयोग किया जा सकता है ॥ ६४ ॥

पांच प्रकारका नस्यकर्म।

प्रतिमर्षोऽवपीडश्च नस्यं प्रधमनं तथा।
शिरोविरेचनश्चैव नस्यकर्म्म तु पञ्चधा।
ईषदुच्छिङ्घनात् स्नेहो यावद्वक्त्रं प्रपद्यते ॥ ६५ ॥

प्रथम रेचन और स्नेहन ये दो भेद नस्यके कहे गये हैं। अवपीड और प्रधमन ये दो रेचन नस्यके भेद हैं। मर्श और प्रतिमर्श ये दो स्नेहन नस्यके भेद हैं। दो रेचन तथा दो स्नेहनके भेद एक नस्य ये सब पांच होते हैं ॥ ६५ ॥

नस्तो निषिक्तस्तं विद्यात्प्रतिमर्षं प्रमाणतः।
प्रतिमर्षं च नस्यार्थं करोति न च दोषभाक् ॥६६॥

नाकमें डालनेपर थोड़ी छींक आकर वो स्नेह मुखमें उतर आता है। उस समय प्रतिमर्श हुआ समझे। इसे निगलना न चाहिये, किन्तु मुखसे निकाल देना चाहिये। जो नस्यमें प्रतिमर्श करते हैं वे दोषी नहीं होते ॥ ६६ ॥

अवपीडके भेद।

शोधनं स्तम्भनं तस्मादवपीडो द्विधा मतः।
आपीड्य दीयते यस्मादवपीडस्ततः स्मृतः ॥६७॥

१ यावद्वक्त्रम् इति पाठान्तरम्।

R शोधन और स्तम्भन भेदसे अवपीड दो प्रकारका है। पत्रादिके निकाले हुए रससे जो नस्य प्रयोग किया जाता है, उसे अवपीड कहते हैं ॥ ६७ ॥

नस्य।

स्नेहार्थं शून्यशिरसां ग्रीवास्कन्धोरसां तथा।
बलार्थं दीयते स्नेहो नस्तः सर्वत्र वर्त्तते ॥ ६८ ॥

स्नेहरहित मस्तकमें स्नेह करनेके अर्थ और गरदन, कन्धा व छातीका बल बढानेके लिये जो स्नेहप्रयोग कियाजाता है उसे नस्य कहते हैं ॥ ६८ ॥

दूसरे स्थलका अवपीड।

अवपीडः प्रधमनं द्वौ भेदावपरौ स्मृतौ।
शिरोविरेचनस्यार्थे तौ तु देयौ यथायथम् ॥६९ ॥
कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितो निष्णुतो रसः।
सोऽवपीडः समुद्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः ॥ ७० ॥

नस्यके और दो प्रकारके भेद हैं, यथा—अवपीड, और प्रधमन। शिरके विरेचनमें इनका यथायोग्य मात्रासे प्रयोग करे। तीक्ष्ण R औषधि कूट कल्कबना निचोडकर रस निकाले, फिर यह रस नस्यके लिये प्रयोग करे, इसे 'अवपीड' कहते हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥

प्रधमन।

षडङ्गुला द्विवक्त्रा या नाडी चूर्णं तथा धमेत्।
तीक्ष्णकोलमितं वक्त्रवातैः प्रधमनं स्मृतम् ॥७१॥

छः अंगुल लंबी, दो मुखवाली खाली नलीमें तीक्ष्ण औषधिका चूर्ण R एक तोला भरकर फूँकसे नाकमें घुसावे, इसे 'प्रधमन' कहते हैं॥ ७१ ॥

रेचन नस्य योग्य प्राणी।

ऊर्ध्वजत्रुगते रोगे कफजे च स्वरक्षये।
अरोचके प्रतिश्याये शिरःशूले च पीनसे।
शोथापस्मारकुष्ठेषु नस्यं वैरेचनं हितम् ॥ ७२ ॥

हसलीके ऊपरके रोगोंमें, कफसे उत्पन्न हुए रोगों तथा स्वरभंगमें, अरुचिरोगमें, जुकाममें, शिरके दर्दमें, पीनस, शोथ, मिरगी और कुष्ठ रोगमें रेचन नस्यका प्रयोग करे ॥ ७२ ॥

रेचन नस्यके अयोग्य प्राणी।

भीरुस्त्रीकृशबालानां नस्यं स्नेहे न शस्यते ॥७३॥

डराहुआ, स्त्री, दुर्बल और बालक इनके लिये स्नेहन नस्य प्रयोग न करना चाहिये ॥ ७३ ॥

अवपीडननस्य योग्य प्राणी।

गलरोगे सन्निपाते निद्रायां सविषे ज्वरे।
मनोविकारे कृमिषु युज्यते चावपीडनम् ॥ ७४ ॥

गलेके रोग, सन्निपात, नींदकी अवस्था, विषमज्वर या विषज्वर उन्मादादि मनके विकार और कृमिरोगमें अवपीडन नस्य देना चाहिये ७४

प्रधमन देनेकी अवस्था।

अत्यन्तोत्कटदोषेषु विसंज्ञेषु च दीयते।
चूर्णं प्रधमनं धीरैस्तद्धि तीक्ष्णतरं यतः ॥ ७५ ॥

जिन मूर्च्छा मृगी आदिमें बेहोशी होती है इस चूर्ण औषधीका नस्यमें धीरे धीरेसे प्रयोग करे; क्योंकि, यह अत्यन्त तीक्ष्ण है। इससे शीघ्रही उपकार दिखाई देता है ॥ ७५ ॥

नस्यकी मात्राएं।

नस्यस्य स्नैहिकस्यात्र देयास्त्वष्टौ च बिन्दवः।
प्रत्येकशो नस्तकर्म नृणामिति विनिश्चयः ॥ ७६॥

R यहां स्नेहननस्यकी मात्रा आठ बून्द हैं (यह उत्तम तथा छः की मध्यम एवम् ४ की कनिष्ठ मात्रा है) इस प्रकारसे मनुष्योंका अवस्था-विशेषमें प्रत्येक मात्रासे मनुष्यका नस्यकर्म वर्णन किया गया है॥७६॥

नस्य न देने योग्य अवस्था।

अष्टवर्षस्य बालस्य नस्यकर्म्म समाचरेत्।
अशीतिवर्षादूर्ध्वञ्च नावनं नैव दीयते ॥ ७७ ॥

R आठ वर्षसे कम उमरके बालकको और ८० वर्षसे अधिक उमर-वालेको नस्य न दे ॥ ७७ ॥

नस्य न देने योग्य।

R **तथा नवप्रतिश्यायी गर्भिणी गरदूषितः।**
अजीर्णी दत्तवस्तिश्च पीतस्नेहोदकासवः ॥ ७८ ॥
क्रुद्धः शोकाभितप्तश्च तृषार्त्तो वृद्धबालकौ।
वेगावरोधी स्नातश्च श्रान्तः कामश्च वर्ज्जयेत्॥७९॥

इति नस्यम्।

जिसको नया जुकाम हुवा हो, गर्भिणी, विषदोषसे युक्त, अजी-र्णका रोगी, जिसने पिचकारीका कर्म किया हो, स्नेह, जल या आस-वादिका पीनेवाला, क्रोधयुक्त, शोकाकुल, तृष्णासे आर्त, वृद्ध, बालक, वेगका (मलमूत्रके वेगका) रोकनेवाला, नहाया हुआ, थका हुआ, जिसको कामका उदय हुआहो ऐसे पुरुषोंको नस्य न देना चाहिये ॥ यह नस्यका प्रयोग पूरा हुवा ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

अनुवासन वस्ति।

भवेत्सुखोष्णश्च तथा निरोति सहसा सुखम्।
विरिक्तस्त्वनुवास्यः स्यात्सप्तरात्रात् परं तदा॥८०

कुछेक गरम अवस्थामें अनुवासनका प्रयोग करनेसे सहसा सुख पूर्वक निकल जाता है। इस कारण विरेचन प्रयोगके सात दिन बाद अनुवासनका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८० ॥

अन्यत्र चोक्तम्-

विरेचनात्सप्तरात्रे गते जातबलाय वै।
कृताहाराय सायाह्ने वस्तिर्ज्ञेयोऽनुवासनः ॥ ८१॥
" अनुदिनं दीयते इत्यनुवासनः "।

विरेचनके बाद सात रात्रि बीत जानेपर जब शरीरमें बल आजाय तब भोजन कराके सायंकालमें अनुवासन वस्तिका प्रयोग करे। अनुदिन (प्रतिदिन) इसका प्रयोग होता है इस कारण इसे अनुवासन कहते हैं ॥ ८१ ॥

नली आदि उपकरण।

सुवर्णरौप्यत्रपुताम्ररीति-
कांस्यायसास्थिद्रुमवेणुदन्तैः।
नलैर्विषाणैर्मणिभिश्च तैस्तैः
कार्याणि नेत्राणि सुकर्णिकानि ॥ ८२ ॥
षड्द्वादशाष्टाङ्गुलसम्मितानि
षड्विंशतिद्वादशवर्षजानाम्।
स्युर्मुद्गकर्कन्धुसतीनकानि
च्छिद्राणि वर्त्या पिहितानि चापि ॥८३ ॥
यथावयोऽङ्गुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां
मूलाग्रयोः स्युः परिणाहवन्ति।

ऋजूनि गोपुच्छसमाकृतीनि
श्लक्ष्णानि च स्युर्गुडिकामुखानि ॥ ८४ ॥
स्यात्कर्णिकैकाग्रचतुर्थभागे
मूलाश्रिते वस्तिनिबन्धने द्वे ॥ ८५ ॥

वंगसेनके वस्ति कर्माधिकारके १२ वां श्लोकसे लेकर सोलह तकका पाठ यहां आनुपूर्वीसे रखा है कि, सोना, चांदी, रांग, तांबा पीतल, कांसी, लोहा, हड्डी, काठ, बांस, दांत, नल, सींग और मणि आदिसे श्रेष्ठ कर्णिकावाली वस्ती देनेकी नली बनावे। छः वर्षकी उमरवालेके लिये छः अंगुलकी, १२ से लेकर वीस वर्षकी उमरवालेके लिये १२ अंगुलकी और छः से लेकर बारह वर्षकी उमरवालेके लिये आठ अंगुल लम्बी नली बनावे। छः अंगुलके नलमें मूँगके समान, १२ अंगुलके नलमें वेरकी गुठलीके समान और आठ अंगुलके नलमें मटरके दानेके समान छेद करके बत्तीसे उसका मुँह ढक दे, इसका परिमाण रोगीके आकारके अनुसार उसके अँगूठेके समान व्यास स्थिर रखके कनऊंगलीकी समान नोक बनावे, मूलमें वो गऊकी पूंछकी तरह मोटी हो। मुख अत्यन्त चिकना हो, गोलीके समान गोल हो इसके आगेके चौथाई अंशमें एक कर्णिका और मूलमें बस्ति बांधनेके लिये दो कर्णिकाओंको बनाना चाहिये८२-८५।

जारद्गवो माहिषहारिणौ वा
स्याच्छौकरो वास्तिरजस्य वापि।
दृढस्तनुर्नष्टशिरोविगन्धः
कषायरक्तश्च मृदुः सुशुद्धः ॥

नृणां वयो वीक्ष्य यथानुरूपं
नेत्रेषु योज्यस्तु सुबद्धसूत्रः ॥ ८६ ॥

बूढाबैल, भैंसा, हरिण, शूकर अथवा छागलके अण्डकोषोंकी दृढ चर्मको पतला करे शिरा (नस) आदि न ले मांसकी गन्ध न रहने दे । फिर कषायद्रव्यसे रंगे मृदु और शुद्ध करे । वृषादिका वस्तिचर्म रोगीकी उमरके अनुसार छोटा बड़ा करके सूतसे नलीसे बांधै॥८६॥

निरूहवस्तिका लक्षण ।

वस्तिस्तु क्षीरतैलैर्यो निरूहः स निगद्यते ॥

(कषाय) दूध और तेलसे जिस वस्तुका प्रयोग किया जाता है उसे 'निरूह' कहते हैं ॥

वस्ती कहनेका कारण ।

वस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्बस्तिरिति स्मृतः॥८७॥

वस्तिसे प्रयोग कियाजाता है इस कारण उसे वस्ति कहा जाता है८७

अनुवासन वस्ति ।

तत्रानुवासनाख्यो हि वस्तिर्यः सोऽत्र कथ्यते ।
पूर्वमेव ततो वस्तिर्निरूहाख्यो भविष्यति ॥८८॥
निरूहादुत्तरश्चैव वस्तिः स्यादुत्तराभिधः ।
अनुवासनभेदश्च मात्राबस्तिरुदीरितः ॥
पलद्वयं तस्य मात्रा तस्मादर्द्धोऽपि वा भवेत् ॥८९

शार्ङ्गधरमें कहा है कि, अनुवासन बस्ति कहते हैं । पहले अनुवासन बस्ति निरूह वस्ति और फिर उत्तरवस्ति कहेंगे । अनुवासनका भेद मात्रावस्ति है, इसकी मात्रा २ पल है । या इससेभी आधी मात्राका प्रयोग भी किया जा सकता है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

अनुवासनके योग्य।

R

अनुवास्यस्तु रूक्षः स्यात्तीक्ष्णाग्निः केवलानिली ॥९०

रूखा, तेज अग्निवाला और जिनके वायु प्रबल है वे पुरुष अनुवासन बस्तिके योग्य हैं ॥ ९० ॥

अनुवासनके अयोग्य।

R

नानुवास्यस्तु कुष्ठी स्यान्मेही स्थूलस्तथोदरी।
नास्थाप्या नानुवास्याः स्युरजीर्णोन्मादतृड्युताः।
शोथमूर्च्छारुचिभयश्वासकासक्षयातुराः ॥ ९१ ॥

शार्ङ्गधरमें लिखा है कि—कोढ, प्रमेह, मेद और उदररोगवाले व्यक्ति अनुवासनक्रियाके अयोग्य हैं। अजीर्ण, उन्माद, प्यास, शोथ, मूर्च्छा, अरुचि, भय, दमा, खांसी और क्षयरोगवालोंकोभी अनुवासन और आस्थापन वस्ति न करना चाहिये ॥ ९१ ॥

वस्तीकी नली।

नेत्रं कार्यं सुवर्णादिधातुभिर्वृक्षवेणुभिः।
×
नलैर्दन्तैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वा विधीयते ॥ ९२ ॥

शार्ङ्गधरमें लिखा है कि—सुवर्णादि धातु, अथवा वृक्ष, बांस, नल, दांत, सींगका अग्रभाग एवम् मणि आदिका नल बनाले ॥ ९२ ॥

अवस्थाके अनुसार नली।

×

एकवर्षात्तु षड्वर्षं यावन्मात्रा षडङ्गुलम्।
ततो द्वादशकं यावन्मानं स्यादष्टसम्मितम् ॥
ततः परं द्वादशाभिरङ्गुलैर्नेत्रदीर्घता ॥ ९३ ॥
मुद्गच्छिद्रं कलायाभं छिद्रं कोलास्थिरन्ध्रकम्।
यथासंख्यं भवेन्नेत्रं श्लक्ष्णं गोपुच्छसन्निभम् ॥ ९४॥

शार्ङ्गधरमें लिखा है कि—बस्तिक्रियाके लिये एकसे लेकर छः वर्षतक छः अंगुलका, बारह वर्षतक ८ अंगुलका एवं इसके आगे १२

अंगुलका लम्बा नल बनावे। छः अंगुलके नलका छेद मूंगके समान, आठ अंगुलके नलका छेद मटरके समान और इससे ऊपर बेरकी गूठलीके समान छेद करे। नल योग्यतानुसार मनोहर और गोकी दुमकी तरह उतार चढावका करे ॥ ९३॥ ९४ ॥

नलीका आकार।

आतुराङ्गुष्ठमानेन मूले स्थूलं विधीयते।
कनिष्ठिकापरीणाहमग्रे च गुडिकामुखम् ॥ ९५ ॥
तन्मूले कर्णिके द्वे च कार्य्ये भागाच्चतुर्थकात्।
योजयेत्तत्र बस्तिं तु बन्धद्वयविधानतः ॥ ९६ ॥

वस्तिक्रियाका नल आतुरपुरुषके अंगूठेके समान व्यासवाला एवम् नलीके मूलमें स्थूल रखकर, कनउंगलीके समान व्यासवाला अग्रभाग (नोक) बनावे। मुख अत्यन्त चिकना, गोलीके समान गोल करके नलीके चौथे भागमें ऐसी कर्णिका बनावै जिससे बस्तीके जोरसे नलका अनिष्ट अंश भीतरकी ओर न घुस आये। मूलकी ओर चौथे भागमें बस्ति बांधनेके लिये दो कर्णिका भी बनाये ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

वस्तीके वस्तवाले।

मृगाजशूकरगवां महिषस्यापि वा भवेत्।
मूत्रकोषस्य वस्तिस्तु तदलाभेन चर्म्मजः ॥
कषायरक्तः समृदुर्बस्तिः स्निग्धो दृढो हितः॥९७॥

शार्ङ्गधरमें लिखा है कि—हरिण, छाग, शूकर, बैल अथवा भैंसेका मूत्रकोष बस्ति क्रियामें श्रेष्ठ है, यह न हो तो चमडेकी बनी बस्तिसे कार्य करे। बस्तिको कषायादिसे रंगले। इसको मुलायम चिकना और मजबूत होना आवश्यक है ॥ ९७ ॥

वस्तीका परिमाण।

व्रणवस्तेस्तु नेत्रं स्याच्छ्लक्ष्णमष्टाङ्गुलोन्मितम्।
मृदुच्छिद्रं गृध्रपक्षिनलिकापरिणाहि च ॥ ९८ ॥

शार्ङ्गधरमें लिखा है कि-व्रण (घाव या फोडे) में वस्तिका प्रयोग करना हो तो उसका नल मनोहर ८ अंगुलके व्यासका गीध-पक्षीकी नलीके समान एवम् मृदुछेदवाला बनावे ॥ ९८ ॥

वस्तिके गुण।

शरीरोपचयं वर्णं बलमारोग्यमायुषः।
कुरुते परिवृद्धिं च वस्तिः सम्यगुपासितः ॥९९॥

शार्ङ्गधरमें लिखा है कि-भलीभांतिसे वस्तीका प्रयोग होजानेपर शरीरको वृद्धि, बलवृद्धि; रंगकी प्रसन्नता, आरोग्य और आयुकी परम वृद्धि होजाती है ॥ ९९ ॥

वस्तिका समय।

दिवा शीते वसन्ते च स्नेहवास्तिः प्रदीयते।
ग्रीष्मवर्षाशरत्काले रात्रौ स्यादनुवासनम् ॥१००॥

शीत और वसन्तकालमें दिनके समय स्नेहवस्ति और ग्रीष्म वर्षा और शरत्कालके समय रात्रिमें अनुवासनवस्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥ १०० ॥

न चातिस्निग्धशमनं भोजयित्वानुवासयेत्।
मदमूर्च्छांश्च जनयेद्द्विधा स्नेहप्रयोजितः ॥ १०१ ॥

अत्यन्त स्निग्ध द्रव्य भोजन कराके अनुवासनका प्रयोग न करे। दो प्रकारके स्नेहसे वस्तिका प्रयोग करनेपर मत्तता और मूर्च्छारोग उत्पन्न होजाता है ॥ १०१ ॥

हीन और अतिमात्राका दोष।

हीनमात्रावुभौ बस्ती नातिकार्यकरौ स्मृतौ।
अतिमात्रौ तथानाहक्लमातीसारकारकौ॥
रूक्षं भुक्तवतोऽत्यन्तं बलं वर्णं च हीयते ॥१०२॥

दोनों प्रकारकी बस्तियोंकी हीन मात्रा अच्छी नहीं है. क्योंकि, इससे कार्य नहीं होता एवं अतिमात्राका प्रयोग करनेसे उपकार नहीं होता किन्तु आनाह (अफारा), क्लान्ति व अतिसारका रोग उत्पन्न होता है। रूखे और अत्यन्त भोजन किये हुएको करानेसे बल और वर्ण नष्ट होजाते हैं॥ १०२॥

अनुवासनकी मात्रएं।

उत्तमस्य पलैः षड्भिर्मध्यमस्य पलैस्त्रिभिः।
पलद्वयेन हीना स्यादुक्ता मात्रानुवासने ॥ १०३॥

अनुवासनकी श्रेष्ठमात्रा ६ पल, मध्यम मात्रा तीन पल और हीन मात्रा २ पल है॥ १०३॥

निरूहकी मात्रा।

निरूहमात्रा प्रथमे प्रकुञ्चो वत्सरे परम्।
प्रकुञ्चवृद्धिः प्रत्यब्दं यावत्षट्प्रसृतास्ततः॥
प्रसृतं वर्द्धयेदूर्द्ध्वं द्वादशाष्टादशस्य तु।
आसप्ततेरिदं मानं दशैव प्रसृता परम्॥ १०४॥

वाग्भट्टने सूत्रस्थानमें लिखा है कि, प्रथम वर्षमें निरूहकी मात्रा एक पल, फिर प्रत्येक वर्षमें एक एक पल मात्रा बढाकर १२ वर्षमें १२ पलतक मात्रा बढावे। १२ वर्षके पीछे १८ वर्षतक प्रतिवर्षमें दो पल मात्रा बढावे, इसके अन्तमें २४ पल होजाती है। फिर सत्तर

वर्षतक उतनी ही मात्राका प्रयोग करे। फिर क्रमानुसार कम करता करता २० पल मात्राही करदेनी चाहिये ॥ १०४ ॥

सम्यग्की पहिचान तथा हीनके दोष।

यथायथं निरूहस्य पादो मात्रानुवासने।
सानिलः सपुरीषश्च स्नेहः प्राप्नोति यस्य वै॥१०५॥
विना पीडां त्रियामस्थः स सम्यगनुवासितः।
विष्टब्धानिलविण्मूत्रः स्नेहहीनेऽनुवासने॥
दाहक्लमपिपासार्तिकरश्चात्यनुवासने ॥ १०६ ॥

यथायोग्य निरूहकी मात्राका चौथाई अंश अनुवासनमें प्रयोग करे। अनुवासनक्रिया भली भांति सिद्ध होजानेपर तीन पहरके अन्दर वायु और मलके साथ स्नेह निकल जाता है। जो अनुवासनक्रियामें भलीभांतिसे स्नेह न हो तो वायु, मूत्र और मलकी रोक होती है। एवम् ठीक अनुवासन न हो तो,दाह श्रम और प्यास उत्पन्न होती है॥ १०६॥

वस्तिके अति शीलनका दोष।

स्नेहात्पित्तकफोत्क्लेदो निरूहात्पवनाद्भयम्।
स्नेहवस्तिं निरूहं वा नैकमेवातिशीलयेत्॥१०७॥

स्नेहवस्ति या निरूहणक्रिया इनमेंसे सदा किसीका भी अभ्यास न करे। क्योंकि,सदा स्नेहबस्तिका प्रयोग,पित्त और कफका उत्क्लेदकारी है। सदा निरूहणक्रियाका अभ्यास करना वायुको बढानेवाला है१०७.

आस्थापनके अयोग्य।

अनास्थाप्या येऽभिधेया नानुवास्याश्च ते मताः।
विशेषतस्तमीपाण्डुकामलामेहपीनसाः॥
निरन्नप्लीहविड्भेदीगुरुकोष्ठकफोदराः॥ १०८ ॥

अभिष्यन्दिकृशस्थूलकृमिकोष्ठोरुमारुताः ॥
पीते विषे गरेऽपच्यां श्लीपदी गलगण्डवान् ॥१०९॥

अष्टांगहृदय सूत्र स्थानमें लिखा है, आस्थापन वस्तिमें असमर्थ पुरुष अनुवासनक्रियाकेभी अयोग्यही है । पाण्डु, कामला, मेह, पीनस, निराहारी, तिल्ली, मलभेद, गुरुकोष्ठ, कफोदर और अभिष्यन्द (आस्राव) रोगसे घिरा हुआ एवम् अतिस्थूल, जिसके कोष्ठमें कीडें हों, ऊरुस्तम्भी, विषभोजी, गरदोषी, अपची, पांवके सूजनवाले और कण्ठमालाके रोगियोंपर अनुवासनका प्रयोग न करे ॥ १०८ ॥ १०९

अनास्थाप्यास्त्वतिस्निग्धः क्षतोरस्को भृशं कृशः ॥
आमातिसारी वमिवान् संशुद्धो दत्तनावनः ॥११॥
श्वासकासप्रसेकार्शो हिक्काध्मानाल्पवर्चसः ।
पायुशूलः कृताहारो बद्धच्छिद्रोदकोदरी ॥
कुष्ठी च मधुमेही च मासान् सप्त च गर्भिणी॥ १११ ॥

अष्टांगहृदयमें लिखा है कि, अतिस्निग्ध, क्षतोरस्क, अत्यन्त दुर्बल, आमातिसारी, वमिरोगवाला, संशुद्ध, नस्यप्रयोगित और दमा, खांसी, प्रसेक, बवासीर, हिचकी, अफारा, मन्दाग्नि, गुह्यशूल, भोजनकारी, बद्धोदर, छिद्रोदर, जलोदर, कोढ और मधुमेहरोगवाले एवम् सात मासकी गर्भिणीपर आस्थापन प्रयोग न करे ॥ ११० ॥ १११ ॥

न चैकान्तेन निर्दिष्टेप्यत्राभिनिविशेद्बुधः ।
भवेत् कदाचित्कार्य्यापि विरुद्धाऽभिमता क्रिया ११
छर्दिहृद्रोगगुल्मार्त्तौ वमनं स्वे चिकित्सिते ।
अवस्थां प्राप्य निर्दिष्टं वस्तिकर्म्म च योजयेत् ११

इत्यनुवासनम् ।

पहले कही हुई रीतीसे अयोग्य क्रिया निषिद्ध होनेपर भी कभी २ किसी खासरोग और खास अवस्थामें निषिद्ध क्रियाकाभी प्रयोजन होता है । जैसे वमि, हृद्रोग और गुल्मरोगमें वमन और कुष्ठरोगमें बस्तिकर्म साधारण करके निषेधित होनेपरभी अपने २ चिकित्साके स्थानमें इनकी भी उचित रूपसे प्रयोगविधि है ॥ यह अनुवासन विधान पूरा हुआ ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

निरूहवस्तिका समय।

अनुवास्य स्निग्धतरं तृतीयेऽह्नि निरूहयेत्।
मध्याह्ने किंचिदावृत्ते प्रयुक्ते बलिमङ्गले ॥ ११४ ॥
अभ्यक्तस्वेदितोत्सृष्टमलं नातिबुभुक्षितम्।
तृतीयेऽह्नि प्रायोवादात् पंचमेप्यह्नि क्रियते ॥११५॥
" निरूहयोदीति-दोषं निर्हरेत् इत्यर्थः ॥ "

स्निग्धतर पुरुषके अनुवासनके पीछे तीसरे दिन निरूहण वस्ति करनी चाहिये । मध्याह्नके समयके कुछ काल पीछे मांगलिक कृत्य कर बलि देकर, जो बहुत भूखा न हो ऐसा मनुष्य मल त्यागकर शरीरमें स्नेह मर्दन और स्वेदप्रदान करे । अनुवासनके बाद तीसरे अथवा पांचवें दिनभी निरूहणक्रिया की जासकतीं है॥ ११४॥ ११५॥

यदाह वाग्भटः—

पंचमेऽथ तृतीये वा दिवसे साधके शुभे ॥ ११६ ॥

वाग्भट्टने कहा है कि, अनुवासनके पीछे पांचवें अथवा तीसरे दिन शुभ क्षणमें निरूहण करावे ॥ ११६ ॥

निरूह या आस्थापन संज्ञाका कारण।

अत एवाह सुश्रुतः—

स दोषहरणाच्छरीररोगहरणाद्वा निरूह इति। अस्यास्थापनमित्यपि नाम। वयःस्थापनादायुःस्थापनाद्वा आस्थापनमिति सुश्रुत एव ॥ ११७ ॥

सुश्रुत कहता है कि, यह शरीरके दोष और रोगोंकी नाशक है। इस कारण इसे निरूह कहते हैं। इसका दूसरा नाम आस्थापन भी है. क्योंकि, यह वयस्थापन और आयुस्थापन करती है॥ ११७॥

पक्षाद्विरेको वान्तस्य ततश्चापि निरूहणम्।
सद्यो निरूढोऽनुवास्यः सप्तरात्राद्विरेचितः ॥११८॥

वमनके १५ दिन पीछे विरेचन देना चाहिये विरेचनके सात दिन बाद विधिपूर्वक अनुवासन कर्म करा फिर सात दिन बाद फिर निरूहण वस्ति करानी चाहिये॥ ११८॥

मधुस्नेह[1]नकल्काख्यः कषायावापतः क्रमात्।
त्रीणि षड् द्वे दश त्रीणि पलान्यनिलरोगिषु ॥११९
पित्ते चत्वारि चत्वारि द्वे द्वे पंच चतुष्टयम्।
षट् त्रीणि द्वे दश त्रीणि कफे चापि निरूहणम्१२०

१ **स्नेहनं** पक्वस्नेहः आमस्य निषिद्धत्वात् "नचामं प्रणयेत् स्नेहं सद्यते स्नेहयेत् गुदाम्" इति दृढबलत्वात्। पक्वस्नेहश्च वातव्याधौ वक्ष्यमाणो नारायणप्रसारणीसैन्धवादितैलादिकः। एवमनुवासनेऽपि॥ कल्को मदनफलादीनाम्। कषायो दशमूलादीनाम्। आवापः काञ्जिकजम्बीररसमांसरसादीनाम्। त्रीणि इत्यादि वातरोगे क्रमाद्यथाक्रमं मधुनस्त्रीणि पलानि, स्नेहस्य षट्, कल्कस्य द्वे, कषायस्य दश, त्रीणि च आवापस्य। एवं पित्ते मधुनश्चत्वारि, स्नेहस्य च चत्वारि, कल्कस्य द्वे, कषायस्य द्विपञ्चेति दशेत्यर्थः। आवाप्यस्य च चतुष्टयमिति एवं कफे मधुनः षट् पलानीति योज्यम्॥

जिन रोगोंमें वायु प्रबल हो उनमें मधु ३ पल, पक्व स्नेह ६ पल, कल्क २ पल, काढा १० पल और कांजी आदिकी मात्रा २ पल, प्रयोग करे। पित्तकी प्रबलतामें मधु ४ पल, पक्व स्नेह ४ पल, कल्क २ पल, क्वाथ १० पल, दूध व कांजी आदि ४ पल एवं कफके कोपमें, मधु ६ पल, पक्व स्नेह ३ पल, कल्क दो पल, काढा १० पल और दूध व कांजी आदि ३ पल रखकर निरूहण करे इसमें मदन फलादिकोंका कल्क, दशमूलादिकोंका कषाय व कांजी आदिकोंका आवाप होता है एवम् नारायण आदि तेल होते हैं ॥११९॥ १२०॥

निरूह वस्तिके भेदोंका कारण।

निरूहवस्तिर्बहुधा भिद्यते कारणान्तरैः।
तैरेवं तस्य नामानि कृतानि मुनिपुङ्गवैः॥ १२१॥

शार्ङ्गधरने लिखा है कि, निरूहवस्ति दूसरे कारणोंके भेदसे अनेक प्रकार विभक्त है। इस कारण मुनिलोगोंने उसका वैसाही नाम रखदिया है॥ १२१ ॥

दूसरा नाम।

निरूहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः।
स्वस्थानस्थापनाद्दोषधातूनां स्थापनं मतम्॥१२२॥

दूसरा और अनुवासन है।

R निरूहका दूसरा नाम आस्थापन है. क्योंकि, दोष और धातुको शुद्ध करके उन्हे यथास्थान स्थापन करती है, इस कारण पंडितोंने इसका नाम 'आस्थापन' रक्खा है॥ १२२ ॥

मात्राएं।

निरूहस्याप्रमाणञ्च प्रस्थं पादोत्तरं परम्।
मध्यमं प्रस्थमुद्दिष्टं हीनञ्च कुडवास्त्रयः॥ १२३ ॥

निरूहकी प्रधानमात्रा सवाप्रस्थ है मध्यममात्रा प्रस्थ और हीन मात्रा तीन कुडव है ॥ १२३ ॥

अतिस्निग्धोत्क्लिष्टदोषः क्षतोरस्कः कृशस्तथा।
आध्मानच्छर्दिहिक्कार्शःकासश्वासप्रपीडितः ॥१२४
गुदशोथातिसारार्त्तो विसूचीकुष्ठसंयुतः।
गर्भिणी मधुमेही च नास्थाप्यश्च जलोदरी॥१२५॥

अतिस्निग्ध, उत्क्लिष्टदोषवाला, उरमें क्षतवाला, दुर्बल, पेटका अफारेका रोगी एवम् वमि, हिचकी, बवासीर,खांसी,दमा,गुदाके दर्द, शोथ, अतिसार, विसूचिका,कोढ,मधुमेह और जलोदरादि रोगवालोंको तथा गार्भिणीको आस्थापन प्रयोग न कराये ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

वातव्याधावुदावर्त्ते वातासृग्विषमज्वरे।
मूर्च्छातृष्णोदरानाहमूत्रकृच्छ्राश्मरीषु च ॥१२६॥
वृद्ध्यासृग्दरमन्दाग्निप्रमेहेषु निरूहणम्।
शूलेऽम्लपित्ते हृद्रोगे योजयेद्विधिवद् बुधः॥१२७॥

वातव्याधि, उदावर्त, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्च्छा, तृष्णा, उदर, अफारा, सुजाक, पथरी, वृद्धि, प्रदर, मन्दाग्नि, प्रमेह, शूल, अम्लपित्त और हृद्रोग आदि रोगसे घिरेहुए रोगियोंपर यथायोग्य चतुर वैद्य निरूहण वस्तिका प्रयोग करे ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं स्निग्धं स्विन्नमभोजितम्।
मध्याह्ने गृहमध्ये तु यथायोग्यं निरूहयेत् ॥१२८॥

वायु (अधोवायु) मलमूत्रादित्याग कराकर स्निग्ध, शरीरमें पसीने दे। भूख लगनेके समय आहार न कराकर मध्याह्नकालमें गृहमें रखकर योग्यतानुसार निरूहणकी क्रियाएं करे ॥ १२८ ॥

स्नेहवस्तिविधानेन बुधः कुर्यान्निरूहणम् ।
जाते निरूहे च ततो भवेदुत्कटकासनः ॥ १२९ ॥
तिष्ठेन्मुहूर्त्तमात्रन्तु निरूहागमनेच्छया ।
अनायातं मुहूर्त्तान्ते निरूहं शोधनैर्हरेत् ॥ १३० ॥

शार्ङ्गधरने कहा है। स्नेहवस्तीकी विधिके अनुसार निरूहण क्रिया करे। निरूहणक्रिया की जानेपर उसके लौट आनेकी प्रतीक्षा करके मुहूर्ततक उत्कटासनपर (उत्कट पांवसे) बैठे। यदि एक मुहूर्त्तमेंभी निरूह न आवे तो निरूहके लौट आनेकी क्रिया करे ॥ १२९ ॥ १३० ॥

सम्यग् निरूहके लक्षण।

न धावत्यौषधं पाणिं न तिष्ठत्यवलिप्य च ।
न करोति च सीमन्तं स निरूहः सुयोजितः॥१३१॥
न धावति–न पृथग्भवति। सीमन्तं–तैलादिरेखाम्।
एतेन मधुस्नेहादीनामपृथग्भाव इति उक्तं भवति॥३२

अत एवोक्तम्–

कल्कस्नेहकषायाणामविवेकाद्भिषग्वरैः ।
वस्तिस्तु कल्कितः प्रोक्तस्तस्यादानं तथार्थकृत्१३३

चिकित्सामृतमें कहा है कि, भलीभांति निरूहणक्रिया करनेकी औषधी हाथमें लगनेसे अलग नहीं होती, हाथमें लेप करनेपर गाढी होकर हाथहीमें रहती है। तेलादिकी रेखाभी दिखाई नहीं देती वो इतनी आपसमें मिलती है ऐसे लक्षण हों तो औषधिका भला प्रयोग हुआ जाने। इस कारण कहा है कि, कल्क, स्नेह और कषायादिकी परस्पर अभिन्नता दिखाई दे तो चतुर वैद्य इस प्रकार यथायोग्यभावसे निरूहवस्तिका प्रयोग करे। इससे योग्य फल पाजाता है॥१३१–१३३

११

वस्तिकी अवधि।

पूर्वोक्तेन विधानेन गुदे वस्तिं निधापयेत्।
त्रिंशन्मात्रास्थितो वस्तिस्तत्र उत्कटको भवेत्१३४
यावत्पर्येति हस्ताग्रं दक्षिणं जानुमण्डलम्।
निमेषोन्मेषकालो वा सा मात्रा परिकीर्त्तिता॥१३५॥

उत्कटको भवेदिति। वस्तेरागमनाय उत्कटक इति। उद्गत इति लोके। एतच्च मृदुकोष्ठं प्रति वेगिनश्च॥ १३६॥

पहले कहे हुए अनुवासनकी विधिके अनुसार निरूहणमेंभी गुदामें बस्तीकी नली रखे। मृदुकोष्ठमें ३० मात्रा काल वस्तिधारण कराकर फिर उत्कटभावसे बिठलावै। दाहिनी जांघके ऊपर हाथ रखके पर्यायके क्रमसे केवल एकवार हाथ घुमानेमें जितना समय लगता है, उतने समय अथवा निमेष वा उन्मेष कालतक बस्ति धारण करना चाहिये॥ १३४-१३६॥

अवेगिनं प्रति क्रूरकोष्ठं प्रति यथा-
जानुमण्डलमावेष्ट्य दत्तो दक्षिणपाणिना।
कृष्णनेत्रच्छटाशब्दशतं तिष्ठेदवेगवान्॥

कृष्णनेत्रः-बहिष्कृतनालिकः। छटा-तुरीति ख्याता॥ १३७॥

कठिन कोठा हो तो दाहिने हाथसे जानुमंडलको वेष्टन कर उत्कटासनसे बैठ नलका प्रवेश करा शान्तिपूर्वक शत तुरी (एकशत अंगुलकी तुरी होती है) कालकी अपेक्षा करे॥ १३७॥

द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथार्हतः[1]।
पुटं प्रदापयेद्वैद्यो बुद्ध्वा रोगबलाबलम् ॥
सम्यङ्निरूढलिङ्गे तु प्राप्ते वस्तिं निवारयेत् १३८

रोगीका बलाबल विचारके दो तीन अथवा चार बारतक जो जितनी वस्तिके योग्य हो उसे उतनी ही बार वस्ति कराये, जब निरूहके लक्षण भलीभांति प्राप्त होजांय तबही वस्तिका प्रयोग बन्द करे३८

वस्तिके लाभ ।

नाभिप्रदेशं च कटिं च गत्वा
कुक्षिं समालोड्य पुनश्च सृष्टम् ।
संस्निह्य कायं सपुरीषदोषः
सम्यक्सुखेनैति च यः स वस्तिः ॥१३९ ॥

प्रसृष्टविण्मूत्रसमीरणत्वं
रुच्यग्निवृद्ध्याशयलाघवानि ।
वेगोपशान्तिः प्रकृतिस्थिता च
बलञ्च तत् स्यात् सुनिरूढलिङ्गम् ॥ १४०॥

स्निग्ध शरीरमें भलीभांति बस्तिका प्रयोग हो । यह कमर, नाभि और कोखको उथलपुथलकर मलके साथ दोषको बाहर निकाल देता है, भलीभांति निरूहण होने पर वायु मूत्र और मलकी सरलता, आहारमें रुचि, अग्निकी वृद्धि, आशयकी लघुता, रोगका दूर होना और देह स्वस्थ होकर बल उत्पन्न होता है ॥ १३९ ॥ १४० ॥

---

१ यथार्ह इति । यो यावन्तं पुटमर्हति तस्य तावन्तं पुटं दापयेदित्यर्थः ।

अच्छी तरह निरूह न होनेके लक्षण।

स्याद्धृच्छिरोरुग्गुदकुक्षिलिङ्गे
शोथः प्रतिश्या परिकर्त्तिका च।
हृल्लासिका मारुतमूत्रसङ्गः
श्वासो न सम्यक् च निरूहिते स्यात् ॥ १४१ ॥
अयोगश्चातियोगश्च निरूहस्य विरेकवत् ॥ १४२॥
इति निरूहवस्तिविधिः।

भलीभांति निरूह न हो तो हृदय और शिरमें दर्द, गुदा, कोख, लिंगमें पीडा और शोथ, जुकाम, हिचकी, वायु और मूत्रकी रुकावट और श्वासरोग होता है। विरेचनके समान निरूहका भी अयोग व अतियोग होता है॥ यह निरूह वस्ति पूरी हुई॥ १४१ ॥ १४२ ॥

अथ उत्तर वस्ति।

अतः परं प्रवक्ष्यामि वस्तिमुत्तरसंज्ञितम्।
द्वादशाङ्गुलकं नेत्रं मध्ये च कृतकर्णिकम् ॥
मालतीपुष्पवृन्ताभं छिद्रं सर्षपनिर्गमम् ॥ १४३ ॥

उत्तरवस्तिकी विधि कही जाती है—उत्तर वस्तिका नल १२ अंगुल लम्बा हो। उसके बीचमें कर्णिका बनानी चाहिये । मालती फूलके वृन्त (फल, पुष्प, पत्रादिका मूल) के समान स्थूल हो तिसमें छेद ऐसा करे जिससे सरसों निकल सके॥ १४३ ॥

उत्तर वस्तिकी मात्रा।

पञ्चविंशतिवर्षाणां मध्ये मात्रा द्विकार्षिकी।
तदूर्ध्वं पलमात्रा च स्नेहस्योक्ता भिषग्वरैः॥ १४४॥

विद्वानोंने पचीस वर्षसे कम उमरवालेके लिये स्नेहकी मात्रा दो कर्ष कही है। इससे ऊपर एक पल मात्राका प्रयोग करे ॥ १४४ ॥

(उत्तर वस्तिकी योजना।)

अथास्थापनशुद्धस्य तृप्तस्य स्नानभोजनैः।
स्थितस्य जानुमात्रेण पीठेऽन्विष्य शलाकया १४५
स्निग्धया मेढ्रमार्गेण ततो नेत्रं नियोजयेत्।
शनैः शनैर्घृताभ्यक्तं मेढ्ररन्ध्राङ्गुलानि षट् १४६ ॥
ततोऽवपीडयेद्वस्तिं शनैर्नेत्रञ्च निर्हरेत्।
ततः प्रत्यागते स्नेहे स्नेहवस्तिक्रमो हितः ॥१४७॥

आस्थापनसे शुद्ध हुए, स्नान भोजनसे तृप्त हुए पुरुषको आसन आदिओंके बल बैठावै, फिर स्नेह लगी शलाका (सलाई) से सावधानताके साथ लिंगके छेदमें अनुवेषण करके घी लगाहुआ नल धीरे २ लिंगमें घुसा दे। छः अंगुलतक नल घुसाकर वस्तिसे पिचकारी मारे फिर धीरे २ नलको लिंगसे बाहर निकाले. स्नेहके बाहिर आनेपर उत्तरवस्ति हुई समझे॥ स्नेहबस्तिका क्रम अच्छा है ॥१४५–१४७॥

स्त्रियोंको वस्ति देनेकी विधि।

स्त्रीणां कानिष्ठिकास्थूलं नेत्रं कुर्याद्दशाङ्गुलम्।
मुद्गप्रवेश्यं योज्यञ्च योन्यन्तश्चतुरङ्गुलम् ॥
द्व्यङ्गुलं मूत्रमार्गे च सूक्ष्मं नेत्रं नियोजयेत् १४८॥

स्त्रियोंके लिये उत्तरवस्तिका नल दश अंगुल लम्बा और चिटली उंगलीके बराबर मोटा हो उसके अगले हिस्सेमें इतना छेद हो कि, उससे एक मूंगका दाना निकलसके, वस्तिका प्रयोग करना हो तो

उसके ४ अंगुलकी बराबर, तथा सुजाकादिरोगमें मूत्ररन्ध्रमें बस्तिका प्रयोग करना हो तो २ अंगुल नल योनिमें प्रवेश करावे ॥ १४८ ॥

बालकोंको वस्ति ।

मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानामेकमंगुलम् ॥ १४९ ॥

परन्तु बालकोंके मूत्ररन्ध्रमें एक अंगुल नल प्रवेश करना ठीक है४९

स्त्रियोंको बस्ति देनेका समय ।

स्त्रीणामार्त्तवकाले तु योनिर्गृह्णात्यपावृतः ।
विदधीत तदा तस्मादनृतावपि चात्यये ॥
योनिविभ्रंशशूलेषु योनिव्यापदसृग्दरे ॥ १५० ॥

वाग्भट्टने सूत्रस्थानमें कहा है कि-ऋतुवाली स्त्रियोंका योनिद्वार खुलाहुआ रहता है । इस समय वस्तिका प्रयोग करनेसे स्नेह योनिमें सहजसे प्रवेश कर सकता है, अतएव ऋतुकालमें ही उत्तर वस्तिका प्रयोग होना चाहिये पर योनिभ्रंश, योनिपीडा, योनिव्यापत् और प्रदररोगमें जरूरतमें रजस्वलावस्थाके विना ही स्त्रियोंकी योनिके मार्गमें उत्तरवस्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥ १५० ॥

देनेकी रीति ।

शनैर्निष्कम्पमाधेयं सूक्ष्मं नेत्रं विचक्षणैः ।
योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपालिकी१५१ ॥

चतुरचिकित्सकको चाहिये कि, धीरे धीरे स्त्रियोंकी योनिमें सूक्ष्म नलका प्रवेश करादे । गर्भाशय शुद्ध करनेके लिये स्नेहकी दो पल तककी मात्राका प्रयोग करे ॥ १५१ ॥

स्त्रीका बिठाना दूसरी वस्ति एवं फलवार्ति ।

उत्तानायै स्त्रियै दद्यादूर्ध्वजान्वै विचक्षणः ।
अप्रत्यागच्छति भिषग् वस्तावुत्तरसंज्ञिते ॥ १५२॥

भूयो वस्तिर्विधातव्यः संयुक्तः शोधनैर्गणैः ।
फलवर्त्तिं निदध्याद्वा योनिमार्गे दृढां भिषक् ॥
सूत्रैर्विशिष्टां तां स्निग्धां शोधनद्रव्यसंयुताम्॥५३॥

स्त्रियोंपर उत्तरवस्तिका प्रयोग करना हो तो उनको चित्त लिटाकर दोनों घुटनोंको ऊपरकी ओर झुकवादे, इससे दोनों जांघें आपही ऊंची होजांयगी फिर चतुर चिकित्सक वस्तिका प्रयोग करे। जो उत्तरवस्ति समयानुसार वापिस न लोटे तो फिर संशोधक द्रव्ययुक्त वस्तिका प्रयोग करे, अथवा योनिमार्गमें मूत्रनिकालनेवाली स्निग्ध सूतसे बन्धी हुई संशोधकद्रव्ययुक्त मजबूत फलवर्त्ति चढावे ९२॥१९३

वस्तिके दाहपर वस्ति ।

दह्यमाने तथा वस्तौ दद्याद्वार्तिं विशारदः ।
क्षीरवृक्षकषायेण पयसा शीतलेन च ॥ १५४ ॥

वस्तिक्रियासे किसी स्थानमें दाह उत्पन्न होजाय तो क्षीरवृक्षके काढे आदि और शीतल जलसे फिर वस्तिका प्रयोग करे ॥१९४ ॥

वस्तिके लाभ तथा प्रमेहीको देनेका निषेध ।

वस्तिः शुक्ररुजः पुसां स्त्रीणामार्त्तवजा रुजः ।
हन्यादुत्तरवस्तिस्तु नोचितो मेहिनां क्वचित्॥१५५

वस्तिके प्रयोगसे पुरुषका शुक्रदोष और स्त्रियोंका रजो दोष नाश होजाता है। परन्तु प्रमेहरोगवालोंपर कभी उत्तरवस्तिका प्रयोग न करे ॥ १९९ ॥

---

१ वङ्गसेन पाठः । मूत्रैर्विनिःसृताम् इति क्वाचित्क पाठः ।

अच्छीकी तथा दोषकी पहिचान।

सम्यग्दत्तस्य लिङ्गानि व्यापदः कर्म एव च।
वस्तेरुत्तरसंज्ञस्य समानं स्नेहवास्तिना ॥ १५६ ॥

उत्तरवस्तिकी भलीभांति सिद्धि और उसके दोष लक्षण उनका इलाज स्नेहवस्तिके ही समान है ॥ १५६ ॥

फल वर्तिका प्रयोग।

घृताभ्यक्ते गुदे क्षेप्या श्लक्ष्णा स्वाङ्गुष्ठसन्निभा।
मलप्रवर्त्तिनी वर्त्तिः फलवर्त्तिश्च सा स्मृता ॥१५७॥

गुदामें घी मलकर, रोगीके अंगूठेके बराबर, साफ मलकी लानेवाली बत्ती फलवर्ति कहाती है. क्योंकि, उनपर वैसेही पदार्थोंका लेप रहता है ॥ ५७ ॥

आनन्दसेनके मतसे वस्तिमात्रा।

अनुवासनभेदैश्च मात्रावस्तिरुदीरितः।
पलार्द्धमुत्तरो वस्तेर्मात्रावस्तेः पलद्वयम् ॥ १५८ ॥
यापना स्नेहबस्तिश्च द्वावेतौ षट्पलान्वितौ।
पिच्छावस्तिर्भवेत् प्रस्थः सपादःकीर्त्तितोऽपरैः१५९
यापनावस्तिरिति–वातविकारयापनार्थं यो वस्तिरित्यर्थः ॥

अनुवासन वस्तिका भेद मात्रावस्ति है, उत्तरवस्तिकी पूर्णमात्रा अर्द्धपल है। मात्रावस्तिकी मात्रा दो पल है। वातविकारमें जिस बस्तिका प्रयोग किया जाता है उसे यापनावस्ति कहते हैं। स्नेहवस्ति और यापनावस्ति इन दोनोंकी मात्रा छः पल है। पिच्छावस्तिकी मात्रा एक प्रस्थ कोई एवम् कोई उसे सवासेरकी कहते हैं ॥१५८॥१५९॥

क्रिया न छोडनेका उपदेश।

न चैकान्ते च निर्दिष्टेप्यत्राभिनिविशेद्बुधः १६०
भवेत् कदाचित्कार्यापि विरुद्धाभिमता क्रिया१६१
अभिनिविशेत्-निश्चयं कुर्यात् इत्यर्थः। अभिमता क्रिया यद्यपि विरुद्धा भवेत्तथापि कार्या इति शेषः॥

चिकित्सक लोगोंको केवल शास्त्रसे नियत की हुई क्रियाके भरोसे रहकर उसीके अनुसार इलाज नहीं करना चाहिये। कुछ युक्तिपरभी विचारना चाहिये। क्योंकि, कहीं कहीं क्रिया विरुद्ध होजाती है वो अपने विचारकी कमीसेही होती है अतः करते रहना चाहिये।६०॥६१

निरूह वस्तिका लक्षण।

दीयते क्षीरतैलैर्यो निरूहः स निगद्यते।
वस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्वस्तिरिति स्मृतः१६२

कोई दूध और तैलादि स्नेह वस्तुओंसे जिस वस्तिका प्रयोग किया जाता है उसे 'निरूह' कहते हैं। मृगादिकी वस्ति द्वारा इसका प्रयोग होता है। इस कारण उसे बस्ति कहते हैं॥ १६२॥

अनुवासन वस्ति।

अत्रानुवासनाख्यो हि वस्तिर्यः सोऽत्र कथ्यते।
पूर्वमेव ततो वस्तिर्निरूहाख्यो भविष्यति॥
निरूहादुत्तरश्चैव वस्तिः स्यादुत्तराभिधः॥१६३॥

पहिले अनुवासन वस्ति कही जाती है। अनुवासनवस्तिके पीछे निरूहवस्ति एवं इसके बाद उत्तरवस्ति होती है॥ १६३॥

अनुवासनके योग्य रोगी।

अनुवास्यस्तु रूक्षः स्यात्तीक्ष्णाग्निः केवलानिली॥१६४

रूखी देहवाले, तीक्ष्ण अग्निवाले एवं वायुरोगसे घिरे हुए मनुष्य अनुवासनके योग्य हैं॥ ६४॥

अनुवासनके अयोग्य ।

**नानुवास्यस्तु कुष्ठी स्यान्मेही स्थूलस्तथोदरी ।
नास्थाप्या नानुवास्याः स्युरजीर्णोन्मादतृड्युताः ।
शोथमूर्च्छारुचिभयश्वासकासक्षतातुराः ॥ १६५ ॥**

कोढ, प्रमेह, स्थूल, उदर, अजीर्ण, उन्माद, प्यास, शोथ, मूर्च्छा, अरुचि, भय, दमा, खांसी और क्षतवाले रोगी आस्थापन और अनुवासनवस्तिके अयोग्य हैं ॥ १६५ ॥ वस्ति पूरी हुई ॥

धूमपान ।

धूमपानके गुण ।

**गौरवं शिरसः शूलं पीनसोर्द्धावभेदकः ।
कर्णाक्षिशूलं कासश्च हिक्का श्वासो गलग्रहः॥ १६६
दन्तदौर्बल्यमास्रावः श्रोत्रघ्राणाक्षिदोषजः ।
पूतिघ्राणास्यगन्धश्च दन्तशूलमरोचकम् ॥१६७ ॥
हनु[1]मन्याग्रहः कण्डूः क्रिमयो मुखपाण्डुता ।
श्लेष्मप्रसेकौ वैस्वर्यं गलगण्डाधिजिह्वके॥ १६८ ॥
खालित्यं पिञ्जरत्वं च केशानां पतनं तथा ।
क्षवथुश्चातितन्द्रा च बुद्धेर्मोहोऽतिनिद्रता ॥ १६९ ॥
धूमपानात् प्रशाम्यन्ति बलं भवति चाधिकम् १७०**

R धूमपान करनेसे देहका भारीपन, शिरदर्द, पीनस, अर्द्धावभेदक (अर्धांग), आंख कानका दर्द, खांसी, हिचकी, दमा, गलग्रह,

---

१ अश्वस्य वातव्याधौ अत्र हनू संगृहीतौ निश्चलौ लालास्रावश्च।जयदत्तः ५५अ० ।

दांतोंकी कमजोरी, मुखसे पानी गिरना, कान, नाक और नेत्रोंका दोष, नासिका और मुखकी दुर्गन्ध, दांतोंका दर्द, अरुचि, हनुग्रह मन्याग्रह (गरदनादिक रहजाना), दाद, कीडे, मुखका श्वेत होजाना, श्लेष्माका कोप, स्वरभंग, कंठमाला, अधिजिह्वक (जीभका घाव), खालित्य (बालोंका फिर न आना), केशोंका रंग बदलना, केशोंका गिरना, क्षवथू (एक प्रकारकी खांसी), तन्द्रा, बुद्धिकी जडता और अति निद्राका नाश होजाता है, बल बढता है ॥ १३६–१७० ॥

दोष ।

रक्तपित्तान्धबाधिर्य्यतृण्मूर्च्छामदमोहकृत् ।
धूमोऽकालेऽतिपीतो वा तत्र शीतो विधिर्म्मतः१७१

अकालमें या अधिक धूमपान करनेसे रक्तपित्त, अन्धापन, बहरापन, प्यास, मत्तता और मोह उत्पन्न होता है । ऐसी अवस्थामें शीतलक्रिया करनी चाहिये ॥ १७१ ॥

धूमः पित्तानिलौ कुर्य्यादवश्यायः कफानिलौ ॥१७२॥

धुँआ–पित्त और वायुका बढानेवाला है तथा अवश्याय (कुहरा) कफ और वायुका बढानेवाला है ॥ १७२ ॥

धूमपानके भेद ।

प्रायौगिकः स्नैहिकश्च वैरेचानिक एव च ।
कासहारी वामनीयो धूमः पञ्चविधो मतः ॥१७३॥

प्रायौगिकः–प्रयोगः।सुस्थस्य स्नेहकारी–स्नैहिकः। दोषविरेचनाद्वैरेचानिकः । कण्टकार्य्यादिभिर्धूमपानात्कासहरः । वमनकारी वामनियः ॥

प्रायौगिक, स्नैहिक, वैरेचनिक, कासहर और वामनीय यह पांच प्रकारका धूमपान है । प्रायौगिक-प्रयोगमें आनेवाला, स्नैहिक स्वस्थ पुरुषको स्निग्ध करनेवाला, वैरेचनिक-दोषोंका विरेचन करनेवाला, कासहारी-कासको हरनेवाला और वामनीय-वमन करानेवाला ये पांच भेद हैं । जैसे कंटकारीके धूमपानसे कास नष्ट होता है, उसी तरह अन्य कार्य्य ओषधियोंके प्रयोगसे होते हैं ॥ १७३॥

धूमपानकी विधि ।

वक्त्रेणैव वमेद् धूमं नस्तो वक्त्रेण वा पिबन् ॥१७४॥
उरःकण्ठगते दोषे वक्त्रेण धूममापिबेत् ।
नासया तु पिबेद्दोषे शिरोघ्राणाक्षिसंश्रये ॥ १७५॥

नासिका या मुखसे धूमपान करके मुखसे छोड दे, छाती और कण्ठके रोगोमें मुखसे धूमपान करे। मस्तक, नासिका और नेत्रोंके रोगोंमें नासिकासे धूमपान करे ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

धूमपानका निषेध ।

योज्यं न पित्तरक्तार्त्तविरिक्तोदरमेहिषु ।
तिमिरोर्ध्वानिलाध्मानरोहिणीदत्तवस्तिषु ॥१७६॥
मत्स्यमद्यदधिक्षौद्रक्षीरस्नेहविषाशिषु ।
शिरस्यभिहते पाण्डुरोगे जागरिते निशि ॥१७७॥

रोहिणी-कण्ठरोहिणी । आशिषु इति मत्स्यादिभिः सम्बध्यते । पाने-भोजने ॥

विरिक्त (विरेचित)एवं रक्तपित्त,उदर, प्रमेह, रतोंधा या धुंद और ऊर्ध्ववातका रोगी,रोहिणीवस्ति दिया हुआ व्यक्ति और मत्स्य,मद्य,दही,

---

१ व्रीहिप्रमाणाग्रन्थ्यपच्यर्बुदश्लीपदगलगण्डाधिष्ठाना । सुश्रुत ४ अ० ।

शहत, दूध, स्नेह और विषका खानेवाला तथा शिर और पाण्डुरोगके रोगी और रातमें जागनेवालोंके लिये धूमपान निषिद्ध हैं। रोहिणी यानी कण्ठ रोहिणी जो कि, व्रीहिके प्रमाणकी होती है, ग्रन्थी अपची अर्बुद श्लीपद और गलगण्डका अधिष्ठान होती है॥ इति धूमपानम्॥ १७७॥

गण्डूष और कवल धारण।

यदाह शार्ङ्गधरः-

चतुर्विधः स्याद्गण्डूषः स्नैहिकः शमनस्तथा।
शोधनो रोपणश्चैव कवलश्चापि तद्विधः॥ १७८॥
स्निग्धोष्णैः स्नैहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादनः।
पित्ते कट्वम्ललवणैरुष्णैः संशोधनः कफे॥१७९॥
कषायत्तिक्तमधुरैः कटूष्णे रोपणो व्रणे।
चतुष्प्रकारैर्गण्डूषः कवलश्चापि कीर्तितः॥ १८०॥

गण्डूष (कुल्ला)-स्नेहन, शमन, शोधन और रोपण भेदसे चार प्रकारका है। इसी प्रकार ग्रास भी चार प्रकारका है। वातकी अधिकाईमें चिकने और उष्णद्रव्यसे स्नेहन गण्डूष, पित्तकी अधिकाईमें मधुर और शीतल द्रव्यसे शमन गण्डूष, कफकी अधिकाईमें कटु, अम्ल और लवणरसयुक्त उष्णद्रव्योंसे शोधन गण्डूष एवम् व्रणरोगादिमें कषाय, कटु, मधुर और तीखे द्रव्योंसे रोपण गण्डूष करने चाहियें। कवलप्रयोग करनेके भी येही नियम हैं, गण्डूष और कवलके येही चार प्रकारके नियम कहेगये हैं॥ १७८-१८०॥

दोनोंकी मात्रा और भेद।

असञ्चारि मुखे पूर्णे गण्डूषः कवलश्चरः।
तत्तु द्रवेण गण्डूषः कल्केन कवलः स्मृतः॥ १८१॥

दद्याद्द्रवेषु चूर्णञ्च गण्डूषे कोलमात्रया।
कर्षप्रमाणः कल्कश्च कवले दीयते बुधैः ॥ १८२ ॥

कुल्लेके लिये द्रव (तरल) पदार्थ मुखमें इस तरह रखने चाहिये कि, उनसे मुह भरजाय। कवलके लिये द्रवपदार्थ इस मात्रासे मुखमें धारण करने चाहिये कि, वे सहज ही चलाये जा सके। गंडूषकी वस्तु काढे आदिमें एक कोल चूर्ण मिलालेना चाहिये। गण्डूषके द्रव पदार्थमें एक तोला कल्क डालने चाहिये ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

दोनोंका समय।

धार्यन्ते पञ्चमाद्वर्षाद्गण्डूषकवलादयः।
गण्डूषान्सुस्थितान् कुर्यात्स्विन्नतालुगलाननः॥१८३
षडष्टत्रींस्तथा पञ्च सप्त वा दोषनाशनान्।
कफपूर्णास्यता यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत् १८४
नेत्रघ्राणस्रुतिर्यावत्तावद्गण्डूषधारणम् ॥ १८५ ॥

पांचवर्षकी आयुके बाद कवल और गण्डूष धारण करने चाहिये। स्वस्थ होकर मुखमें गंडूष धारण करे। तालु, गला तथा मुखपर पसीने आनेतक छः, आठ, तीन, पांच अथवा सातवार दोषनाशक कुल्ले करने चाहिये। कुल्ला करती बार जबतक मुख कफपूर्ण न हो, दोष दूर न हो, नेत्र और नासिकासे पानी न निकले तबतक गण्डूष धारण करे ॥ १८३–१८५ ॥

तीनोंकी एक दवा।

यस्यौषधस्य गण्डूषस्तस्यैव प्रतिसारणम्।
कवलश्चापि तस्यैव ज्ञेयोऽत्र कुशलैर्नरैः॥ १८६ ॥

जिस जिस औषधिसे गण्डूष धारण होता है, प्रतिसारण (अंजन) और कवलभी उन्ही द्रव्योंसे होते हैं ॥ १८६ ॥

हुएके गुण तथा हीनके दोष।

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्त्रलाघवम्।
इन्द्रियाणां प्रसादश्च गण्डूषे शुद्धिलक्षणम्॥१८७॥
हीनयोगात्कफोत्क्लेशो रसाज्ञानारुचिस्तथा।
अतियोगान्मुखे पाकः शोषस्तृष्णा क्लमो भवेत्१८८

जो भलीभांतिसे गंडूष प्रयोग होजाय तो रोगनाश, मुखकी निर्मलता, हलकापन और सब इन्द्रियां प्रसन्न होती हैं। ऐसे लक्षण प्रकाशित हों तो गण्डूषका धारण शुद्ध हुआ समझना चाहिये। भलीभांति गण्डूषके धारण न होनेसे कफोत्क्लेश रसज्ञानकी अल्पता और अरुचि उत्पन्न होती है। अधिक क्रियासे मुखपाक, शोष, प्यास और क्लान्ति उत्पन्न होती है॥ १८७ ॥ १८८ ॥

हितकारी मात्रा।

सुखं सञ्चार्यते या तु सा मात्रा कवले हिता।
असञ्चार्या तु या मात्रा गण्डूषे सा प्रकीर्त्तिता१८९॥

जितनी मात्राका द्रवद्रव्य मुखमें रखनेसे सहजही चलायमान किया जासके उससे ही कवल धारण हितकर है। द्रव्यकी जितनी मात्रा मुखमें धारण करनेसे चलायमान न होसके, वही कुल्लेकी योग्य मात्रा है ॥ १८९ ॥ यह गंडूष और कवलधारण विधि पूरी हुई ॥

रक्तमोक्षणविधि।

अति रक्त मोक्षणके दोष।

अतिस्रुतौ हि मृत्युः स्याद्दारुणा वानिलामयाः ॥१९०

अधिक रुधिर निकलनेसे मृत्यु अथवा दारुण वायुरोग उत्पन्न होते हैं ॥ १९० ॥

उचित रक्त मोक्षणके गुण।

प्रसन्नवर्णेन्द्रियमिन्द्रियार्थानिच्छन्तमव्याहतशक्तिवेगम्। सुखान्वितं पुष्टिबलोपपन्नं प्रसन्नरक्तं पुरुषं वदन्ति ॥ १९१ ॥

रक्तके शुद्ध रहनेसे वर्ण और इन्द्रियोंकी प्रसन्नता, सब क्रियाओंके करनेमें इन्द्रियोंकी अरोकशक्ति, मलमूत्रादिका ठीक ठीक उतरना, सुस्थता, शरीरमें पुष्टि और बल उत्पन्न होता है ॥ १९१ ॥

समय।

न ह्यूनषोडशातीतसप्तत्यर्वास्स्रुतासृजाम् ॥१९२॥

सोलह वर्षसे कम अथवा ७० वर्षसे अधिकके मनुष्यका रक्तमोक्षण करना यानी फस्त आदि खोलना उचित नहीं है ॥ १९२ ॥

शिरावेधके अयोग्य।

अस्निग्धास्वेदितात्यर्थस्वेदितानिलरोगिणाम्।
गर्भिणीसूतिकाजीर्णपित्तास्रश्वासकासिनाम् १९३
अतिसारोदरच्छर्दिपाण्डुसर्वाङ्गशोषिणाम्।
स्नेहपीते प्रयुक्तेषु तथा पञ्चसु कर्म्मसु ॥ १९४ ॥

रूखे, जिसे पसीना न आता हो, जिसे बहुत पसीना आता हो, वातरोगयुक्त, गर्भिणी, सूतिका एवम् अजीर्ण, रक्तपित्त, दमा, खाँसी, अतिसार, उदर, वमन और पाण्डुरोगसे घिरेहुए, अत्यन्त दुबले, स्नेहपीत और पंचकर्मवाले पुरुषकी फस्त न खोले ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

विधि ।

नायन्त्रितां शिरां विध्येन्न तिर्यङ् नाप्यनुत्थिताम् ।
नातिशीतोष्णवातार्तिष्वन्यत्रात्यायिकाद्गदात् ॥१९॥

जो शिरा वेधके योग्य हैं तो तिरछे भावसे उनकी शिराको बिना बांधे वा उठाये न वेधे । अत्यन्त शीत, अत्यन्त गरम, अत्यन्त वायु या अवरके दिन फस्त न खोलना चाहिये । परन्तु मारात्मक व्याधि हो तो निषिद्धकालमेंभी शिरावेध करनेमें कोई दोष नहीं है ॥ १९५ ॥

अथ घृततैलमूर्च्छाविधिः ।

घृतमूर्च्छाविधि ।

पथ्याधात्रीविभीतैर्जलधररजनीमातुलुङ्गद्रवैश्च
द्रव्यैरेतैः समस्तैः पलकपरिमितैर्मन्दमन्दानलेन ।
आज्यं प्रस्थं विफेनं परिचपलगतं मूर्च्छयेद्वैद्यराज-
स्तस्मादामोपदोषं हरति च सकलं वीर्यवत्
सौख्यदायी ॥ १९६ ॥

हरड, बहेडा, आमला, मोथा, हलदी, बिजौरा नींबूका रस घृत मूर्च्छित करनेके ये ही छः द्रव्य हैं । इन सबोंको एक एक पल लेकर मन्दी मन्दी आगसे एक प्रस्थ घी मूर्च्छित करे यानी पहले घीको पकावे, जब फेनरहित होजाय तो मूर्च्छाके सारे द्रव्य उसमें डाल दे । मूर्च्छा करनेसे घृतका आमदोष नष्ट होकर वीर्यवन्त और सुखदायी होजाता है ॥ १९६ ॥

कटुतैलमूर्च्छाविधि ।

वयस्थारजनीमुस्तबिल्वदाडिमकेशरैः ।
कृष्णाजीरकह्रीबेरनलिकैः सविभीतकैः ॥ १९७ ॥

एतैः समांसैः प्रस्थे च कर्षमात्रं प्रयोजयेत् ।
कटुतैलं पचेत्तेन आमदोषहरं परम् ॥ १९८ ॥

आमला, हलदी, मोथा, बेलकी छाल, दारवीकी छाल; नागकेशर, कालाजीरा, वाला, यवारी, बहेडा और मंजीठ ये ग्यारह द्रव्य कडुवे तेलको मूर्च्छित करते हैं। एक प्रस्थ तेलमें इन ग्यारहो चीजोंको एक एक कर्ष डाले । चौगुने जलमें सिद्धकरे, पहलेकी पाक विधिके अनुसारही इसकी पाक विधि है। मूर्च्छासे कडवे तेलका आमदोष नष्ट होजाताहै ॥ १९७ ॥ १९८ ॥

एरण्डतैलमूर्च्छाविधि ।

विकसा मुस्तकं धान्यं त्रिफला वैजयन्तिका ।
ह्रीबेरघनखर्जूरवटशृङ्गानिशायुगम् ॥ १९९ ॥
नलिकाभेषजं देयं केतकी च समं समम् ।
प्रस्थे देयं शाणमितं मूर्च्छने दधि काञ्जिकम्॥२००॥

मंजीठ, मोथा, धनिया, आमला, बहेडा, जयन्ती,नेत्रवाला, खजूर, बडकी दाढी, हलदी, दारुहलदी, यवारी और केतकी ये सब बराबर ले तथा एक प्रस्थमें एक शाण दही, कांजी डाले । इससे एरण्डका तैल मूर्छित होजाता है ॥ १९९ ॥ २०० ॥

तिलतैलमूर्च्छाविधि ।

मञ्जिष्ठारात्रिलोध्रैर्जलधरनालिकैः साक्षपथ्यैः कुमार्या
सूचीपुष्पाङ्घ्रिनीरैरुपहितमथितैर्गन्धयोगं जहाति।
तैलस्येन्दुकलांशिकैकविकसाभागोऽपि मूर्च्छाविधौ
ये चान्ये त्रिफलापयोदरजनीह्रीबेरलोध्रान्विताः ॥

सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्तस्याश्च पादांशिका
दुर्गन्धं विनिहन्ति तैलमरुणं सौरभ्यमाकुर्वते ॥२०१॥

मंजीठ,हलदी, लोध, मोथा, यवारी, आमला, वहेडा, हरड,महासहा, केवडा, जटा, वडकी दाढी और वाला इन सबका चूर्ण जलमें मिला विधिपूर्वक मथकर तेलमें डाले, इनसे तेलकी गन्ध मारी जाती है, मूर्च्छित बनानेकी तो विधि यह है कि, तेलके इन्दुकला—१/१६ अंश मंजीठ होनी चाहिये । मंजीठका १/४ प्रत्येक दवा होनी चाहिये यानी ८० तोले तेल हो तो ५ तोले मंजीठ लेनी चाहिये एवम् सवा तोले हर्ड, वहेडा, आमला, मोथा, हलदी, नेत्रवाला, लोध, सूचीपुष्प,वड़की डाढी और न्यवारी लेनी चाहिये । यें दुर्गंधको बिलकुल नहीं रहने देती हैं तेलको अरुण कर देती हैं अपूर्व सुगन्धि आजाती है॥२०१॥

कृत्वा तैलं कटाहे दृढतरविमले मन्दमन्दानलैस्त-
त्तैलं निष्फेनभावं गतमिह च यदा शैत्ययुक्तं तदैव२०२

पहले मजबूत कढाईमें मन्दी २ आग देकर तेलको पकाये. झाग बन्द होजाने पर चूल्हेसे उतारले । ठंढा होजानेपर जलमें पीसी हुई हलदी पानीमें घोलकर क्रमानुसार तेलमें डाले, फिर कूटकर जलयुक्त मंजीठ धीरे २ तेलमें डाले फिर मूर्च्छाके और द्रव्य क्रमानुसार तेलमें डालने चाहिये ॥ २०२ ॥

तैलमूर्च्छा ।

पञ्च पत्रं रसैर्युक्तं दधिलाक्षासमन्वितम् ।
मूर्च्छनं कारयेत्प्राज्ञो गन्धं वर्णं जहाति च ॥२०३॥

नीचे लिखे हुए पांचों पत्रोंके रसके साथ दही व लाखसे मूर्च्छित करना उचित है । इससे तेलका असली रंग दूर होजाता है; दुर्गंध नष्ट होजाती है एवम् उत्तम रंग और उत्तम सुगन्ध होती है ॥ २०३ ॥

पञ्चपल्लव ।

आम्रजम्बूकपित्थानां बीजपूरकबिल्वयोः ।
गन्धकर्मणि सर्वत्र पत्राणि पंचपल्लवम् ॥ २०४ ॥

पञ्च पत्र शब्दसे गन्ध कर्ममें सब जगह आम, जामन, कैथ, बिजौरानींबू और बेलके पत्ते समझने चाहियें ॥ २०४ ॥

गन्धद्रव्य ।

एलाचन्दनकुंकुमाऽगुरुमुरा कक्कोलमांसी शठी
श्रीवासच्छदग्रन्थिपर्णशशभृत्क्षौणिव्रजोशीरकम् २०५
कस्तूरी नखपूतिशैलजशुभामेथीलवङ्गादिकं
गन्धद्रव्यमिदं प्रदेयमखिलं श्रीविष्णुतैलादिषु २०६ ॥

गन्धद्रव्य, इलायची,, लालचन्दन, कुंकुम, अगर, कपूरकचरी, बालछड, कचूर, सफेदचन्दन, गठिवन, कपूर शिलारस (लोवान),खस, कस्तूरी, नखी,गन्धमार्जारवीर्य्य, गजपीपल, प्रियंगु, मेथी और लौंगादि ये सब गन्धद्रव्य हैं इनका विष्णुतैलादिमें प्रयोग होताहै॥ २०५॥२०६॥

दूसरे गन्ध द्रव्य ।

देवदारुसरलागुरुत्वचं तेजपत्रघनकुष्ठकुङ्कुमम् ।
ग्रन्थिपर्णिशठिकोग्रगन्धकं मांसिकानखरकोटिकुंदुरु॥

पूतिकं मधुरिकैलरानखीचन्दनं समपरं प्रियङ्गुकम् ।
मेथिकामदसुवास्यचंपकंदेवताडनालिकासपृक्कया२०८
कक्कोलकं कल्कसमानि तैले
देयानि सर्वाणि सुगन्धिकानि ।
अन्यान्यशेषाणि हितानि वैद्यै--
र्वातापहारीणि सुयोजितानि ॥ २०९ ॥

देवदारु, धूपसरल, अगर, दालचीनी, तेजपात, मोथा, कूठ, कुंकुम, गठिवन, गन्धपलाशी, वच, बालछड, नखी, कुंदरू, गन्धमार्जारवीर्य, सोया, इलायची, नखी, चन्दन, प्रियंगु, मेथी, कस्तुरी, सुगन्धिचम्पा, देवदारु, यगरी, असवर्ग, और शीतलनी ये सब गन्धद्रव्य हैं इन्हें कल्कके बराबर तेलमें डाले। चतुर वैद्यको चाहिये कि, दूसरे भी वायुनाशक हितकारी द्रव्य विचारपूर्वक तेलमें डालदे ॥ २०७-२०९॥

तैलाद्गन्धस्य पादार्द्धं दद्यात्तच्छास्त्रविद्भिषक् ।
केचिद्गन्धं समं मन्ये सर्वत्र गन्धकर्म्माणि ॥ २१० ॥
इति ग्रन्थान्तरस्य ।

शास्त्रके जाननेवाले वैद्यको चाहिये कि, गंधकर्ममें सर्वत्र तेलके आठवें हिस्सेकी बराबर गन्धद्रव्य डाले कोई २ वैद्य कल्कके बराबर गन्धद्रव्य डालनेके लिये कहते हैं ॥ २१० ॥

मतान्तरके गन्ध द्रव्य ।

कुष्ठञ्च नालुका पूतिरुशीरं श्वेतचन्दनम् ।
जटामांसी तेजपत्रनखी मृगमदः फलम् ॥ २११ ॥
कक्कोलं कुङ्कुमं चोचं लताकस्तूरिका वचा ।
सूक्ष्मैलाऽगुरुमुस्तं च कर्पूरं ग्रन्थिपर्णकम् ॥ २१॥

श्रीवासः कुन्दुरुर्देवकुसुमं गन्धमातृका ।
सिंह्लकं मिषिका मेथी भद्रमुस्तं शठी तथा॥२१३॥
जातीफलं शैलजञ्च देवदारु सजीरकम् ।
एतानि गन्धद्रव्याणि तैलपाकेषु युक्तितः ॥ २१४॥
इति परिभाषाप्रदीपसंग्रहे चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

कुष्ठ, यचोरी, गन्धमार्जारवीर्य्य,खस, सफेदचन्दन, बालछड; तेजपात, नखी, कस्तूरी, शीतलचीनी, कुंकुम, दालचीनी, मुष्कदाना, वच, छोटी इलायची, अगर, मोथा, कपूर, गठिवन,धूपसरल, कुन्दुरू, लौंग, गन्धमालती, शिलारस, सोया, मेथी, नागरमोथा, गजपीपल, जायफल, गन्धपलाशी, देवदारु और जीरा इन गन्ध द्रव्योंको तेलके पाकमें युक्ति पूर्वक डाले ॥ २११–२१४ ॥

इति श्रीमुरादाबादनिवासी श्रीमान् पं. ललिता प्रसादजीकी कीहुई एवम् सर्व तंत्र स्वतंत्र रीसर्चस्कालर पं. माधवाचार्य्य परीष्कृत भाषाटीका सहित वैद्यक परीभाषाप्रदीप समाप्त हुआ ॥

समाप्तोयं ग्रन्थः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
" लक्ष्मीवेंकटेश्वर " स्टीम् प्रेस,
कल्याण–मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
" श्रीवेंकटेश्वर " स्टीम् प्रेस,
खेतवाडी–मुंबई.

जाहिरात.

	की. रु. आ.
अष्टाङ्गहृदय-(वाग्भट) मूल, वाग्भट-विरचित	४-०
अष्टाङ्गहृदय-(वाग्भट) भाषाटीकासहित	१०-०
अमृतसागर-भाषा	३-०
अनुपानदर्पण-भाषाटीकासहित	१-०
आयुर्वेदसुषेणसंहिता-भाषाटीकासहित	१-४
करिकल्पलता-छन्दोबद्ध हिन्दीभाषामें	१-१२
कोकसार वैद्यक सचित्र-कोकापण्डितकृत	२-०
चर्याचन्द्रोदय-भाषाटीकासहित	२-८
चरकसंहिता-वैद्यरत्न पं० रामप्रसाद राजवैद्य-कृत भाषाटीकासहित	१६-०
चिकित्साक्रमकल्पवल्ली-काशीनाथ चतुर्वेदीकृत, मूल	३-८
जर्राहीप्रकाश-चारों भाग.	१-८
डाक्टरीचिकित्सार्णव-बड़ा	२-०
धन्वन्तरिवैद्यक-स्व० लाला शालग्राम वैश्यसंकलित तथा स्वकृत भाषाटीकासहित	८-०
नाडीज्ञानतरंगिणी-भाषाटीकासहित	१-४
पञ्चसायक-भाषाटीकासहित	२-०
पशुचिकित्सा-(वृषकल्पद्रुम) छन्दबद्ध भाषा	१-८
पारदसंहिता-भाषाटीकासहित	१२-०
बालतन्त्र-कल्याणवैद्यरचित, भाषाटीकासहित	१-४

	की. रु. आ.
भावप्रकाश–भावमिश्र संगृहीत, मूल ३ खण्ड.	४–८
माधवनिदान–पं० दत्तराम चौबेकृत भाषाटीकासहित	२–८
मिज्जानुतिब्ब–अर्थात् सर्वाङ्गचिकित्सा	२–०
योगतरङ्गिणी–त्रिमल्लभट्टकृत मूल	१–१२
योगतरंगिणी–त्रिमल्लभट्टकृत तथा पं० दत्तराम-चौबेकृत भाषाटीकासहित	३–०
योगचिन्तामणि–पं० दत्तरामचौबेकृत भाषाटी० सहित । ग्लेज.	२–०
योगचिन्तामणि–रफ.	१–१२
रतिवल्लभ–भाषाटीकासहित	१–८
रसरत्नसमुच्चय–वाग्भटाचार्यकृत मूल	२–८
रसरत्नसमुच्चय–भाषाटीकासहित	५–०
रसमञ्जरी–भाषाटीकासहित	१–२
रसरत्नाकर–भाषाटीकासहित	८–०
वृन्दवैद्यक–भाषाटीकासहित	४–०
शार्ङ्गधरसंहिता–भाषाटीकासहित ग्लेज.	३–८

(बडा सूचीपत्र अलग है मँगाकर सम्पूर्ण ग्रन्थ देखो.)

पुस्तकें मिलनेका ठिकाना–

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
" लक्ष्मीवेंकटेश्वर " छापाखाना,
कल्याण–बंबई.



ओ३म्

Jhanga
Quetta

43928

जगपाल

सब चीजों का कुल भार - १सेर
घी - ४सेर
पानी १६पानी

पकाने के बाद मोम

३ वल्द. १भाग
घी, तेल ४भाग
१ क्वाथद्रव्य ४भाग
२ दूध. १६भाग

तेलपूर्ति भाग तेलके बराबर क्वाथद्रव्य



